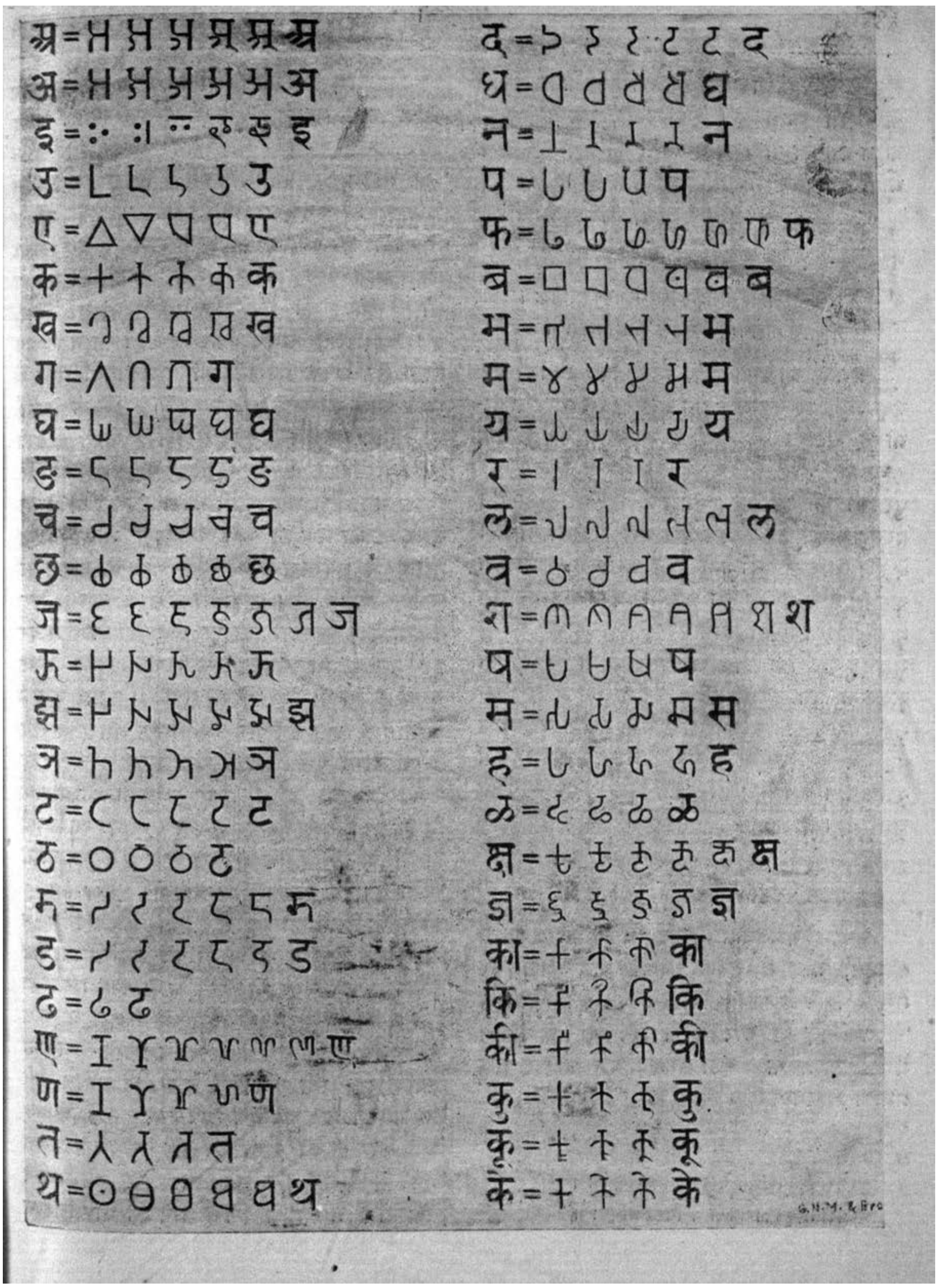

देश के वैदिक और लौकिक साहित्य के पण्डितों को हँसी आती है। सम्भव है, इस प्रकार का शङ्का-बाहुल्य पाश्चात्य पण्डितों की सूक्ष्मतर दृष्टि और विशेषतर पण्डिताई का फल हो।

मनुस्मृति के दसवें अध्याय का पहला श्लोक यह है—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्म्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद् ब्राह्मणस्तेषां नेतरौ इति निश्चयः ॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य—तीनों वर्ण वेद पढ़ें, पर पढ़ावें सिर्फ़ ब्राह्मण। इसमें "अधीयीरन्" क्रिया का अर्थ है अध्ययन करें। और अध्ययन, अध्यापन आदि शब्दों से लिखी हुई पुस्तकों का ही पढ़ना पढ़ाना सूचित होता है। परन्तु मोक्षमूलर साहब इस अर्थ को नहीं मानते। वे इस तरह के पदों का अर्थ करते हैं—अधिगत करना, प्राप्त करना, या पाना। अर्थात् उनके मत में मनुस्मृति में भी कहीं लिखने का ज़िकर नहीं। मतलब यह कि उस समय तक भी लिखने की कला का प्रचार या प्रादुर्भाव इस देश में न हुआ था। परन्तु साहब की दृष्टि एक श्लोक पर नहीं गई। वह मनुस्मृति के आठवें अध्याय का १६८वां श्लोक है। उसमें "लेखित" शब्द स्पष्ट-रूप से आया है। देखिए—

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यचापि लेखितम् ।
सर्वान् बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥

अर्थात् बलपूर्वक दी हुई, बलपूर्वक उपभोग की हुई, और बलपूर्वक लिखाई हुई चीज़ों को मनु न करने के बराबर मानते हैं। इस श्लोक में 'लेखित' पद के आजाने से मनुस्मृति के ज़माने में लिपिकला के अच्छी तरह प्रचार का बलवान् प्रमाण विद्यमान है।

महाभारत में लिखा है—

वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव लेखकाः ।
वेदानां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥

जो लोग वेदों की बिक्री करते हैं, अर्थात् कुछ लेकर उन्हें पढ़ाते हैं, वेदों को लिखते हैं, वेदों की निन्दा करते हैं, वे सब नरकगामी होते हैं। मोक्षमूलर साहब कहते हैं कि इस श्लोक में "लेखकाः" पद से लेखकों का अर्थ तो ज़रूर निकलता है; पर महाभारत के समय में वेद लिखे नहीं जाते थे। क्यों? उनके लिखने की मनाई थी? साहब की यह उक्ति एकबारही युक्तिहीन है। यदि उस समय किसीने वेदों को न लिखा होता तो उनके लिखने की मनाई क्यों होती? जिस चीज़ का अस्तित्व ही नहीं, उसके करने का कहीं निषेध होता है? लोग चोरी करते हैं इस लिए पेनलकोड में चोर के लिए दण्ड का विधान किया गया है। यदि कभी चोरी हुई हो न होती तो दण्ड का भय ही क्यों दिखाया जाता? इस श्लोक में वेदविक्रय की जो बात है, उससे दो अर्थ निकलते हैं। एक तो वेतन के रूप में कुछ लेकर वेद पढ़ाना, दूसरा वेद लिखकर लिखी हुई पुस्तक को बेचना। यदि दूसरा अर्थ न भी ग्राह्य हो तो भी लेखकों को नरक में जाने का भय दिखाना। इस बात को निर्विवाद सिद्ध करता है कि लोगों ने वेद को लिखना ज़रूर शुरू किया था। अन्यथा उनके लिए नरकगमन का डर दिखाने की कोई ज़रूरत न थी। जब कोई नई बात निकलती है तब उसके प्रचार में बहुधा बाधा आती है। इस समय भी अनेक नई नई बातें करने की तरफ़ लोगों की प्रवृत्ति है; और कुछ लोग करने भी लगे हैं। परन्तु उन बातों की उपयोगिता का ख़याल न करके पुरानी बातों के पक्षपाती उनका विरोध कर रहे हैं। इस उदाहरण से हम अनुमान कर सकते हैं कि जब पहले पहल लिपि-कला की उत्पत्ति हुई होगी, तब वेदों के समान पवित्र माने गए ग्रन्थों को अपवित्र नहीं, तो तुच्छ, काग़ज़ और स्याही की सहायता से लिपिबद्ध करना लोगों को अच्छा न लगता होगा। अतएव उन्होंने तत्कालीन ग्रन्थों के लिखे जाने का घोर विरोध

किया। बहुत सम्भव है कि मनुस्मृति और महाभारत के बहुत पहले वर्णमाला की उत्पत्ति हुई हो; पर, नई आविष्कृति के कारण, लोगों के विरोध करने पर बहुत दिनों तक उसका प्रचार रुका रहा हो।

बाबू रामदास सेन ने बँगला में ऐतिहासिक-रहस्य नाम की एक पुस्तक तीन भागों में लिखी है। उसमें आपने व्याकरण-प्रणेता पाणिनि के समय आदि का भी विचार किया है। आपका विचार युक्तिसिद्ध और प्रमाणपूर्ण है। आपके मत में पाणिनि का समय ईसवी सन के पाँच छः सौ वर्ष पहले है। पर मोक्षमूलर साहब को पाणिनि के समय में भी लिपिकला के उत्पन्न होने में शङ्का है। इस विषय पर आपने अपने संस्कृत के इतिहास में बहुत कुछ शङ्का-समाधान किया है। साहब की सब शङ्काओं की अवतारणा करने की हम, इस छोटे से लेख में, ज़रूरत नहीं समझते। हम सिर्फ़ दो एक स्थूल बातें कह कर ही साहब की शङ्काओं का समाधान करने की चेष्टा करते हैं। पाणिनीय व्याकरण के आरम्भ ही में अ इ उ ण् और ऋ ऌ क् आदि जो माहेश्वर सूत्र हैं उनमें सारी वर्णमाला आगई है। यदि पाणिनि के समय में—समय में क्यों, उससे भी बहुत पहले—वर्णों की सृष्टि न हुई होती तो उनका नाम इन सूत्रों में क्यों कर आता? फिर एक बात और है। जब तक कोई भाषा अच्छी तरह लिखी नहीं जाती तब तक उसका व्याकरण नहीं बनता। संस्कृत व्याकरण में बहुत से नियम ऐसे हैं जो अगले वर्णों से सम्बन्ध रखते हैं। व्यवधान और अव्यवधान का भी उसमें अनेक जगह पर ज़िकर है। ये बातें तभी सम्भव होती हैं जब भाषा लिखित रूप में प्रचलित हो। पाणिनि ने 'ग्रन्थ' शब्द का भी कई वार उपयोग किया है। इससे भी उनके समय में लिपि का होना सिद्ध है। क्योंकि ग्रथन करना अर्थात् गूथना वर्णों के बिना सम्भव नहीं। और ग्रन्थ का अर्थ वाक्यों या शब्दों का गूथना ही है।

ललित-विस्तर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वह एक बौद्ध पण्डित का बनाया हुआ है। परलोकवासी डाकृर राजेन्द्रलाल मित्र ने उसे, सम्पादन करके, छपवाया है। डाकृर साहब ने उसकी जो भूमिका लिखी है वह बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण है। ७६ ईसवी में इस पुस्तक का अनुवाद चीनी भाषा में हुआ है। बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय अपने एक लेख में इस पुस्तक का हवाला देकर लिखते हैं कि शाक्यसिंह ने विश्वामित्र नामक एक अध्यापक से लिखना सीखा था और अङ्ग, वङ्ग, मगध, द्राविड़ आदि देशों में प्रचलित कई प्रकार की लिपियां वे लिखते थे। इससे स्पष्ट है कि ईसा के कई सौ वर्ष पहले लिखने की कला का प्रचार इस देश में हो गया था, और एकही नहीं, किन्तु कई प्रकार की लिपियां प्रचलित हो गई थीं। हम यह लेख एक ऐसी जगह लिख रहे हैं जहां ललित-विस्तर अप्राप्य है। इससे हम बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के दिये गये प्रमाण को ख़ुद नहीं देख सके। परन्तु हमको बाबू साहब के कथन पर विश्वास है। हम उनके दिये हुये प्रमाण को अमूलक नहीं समझते।

हितोपदेश में है—"पञ्चतन्त्रात्तथान्यस्माद्-ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते"। अर्थात् पञ्चतन्त्र तथा और और ग्रन्थों से भी विषयों का संग्रह करके यह पुस्तक लिखी जाती है। फ़ारस के बादशाह नौशेरवां की आज्ञा से हितोपदेश का अनुवाद ५५० ईसवी में, फ़ारसी भाषा में, हुआ है। अतएव आज से कोई १४०० वर्ष पहले लिखने का प्रचार बहुत कुछ हो गया था। हितोपदेश से उद्धृत किये गये पूर्वोक्त वाक्य में "लिख्यते" पद इस की गवाही दे रहा है।

इन प्रमाणों से यह निर्विवाद है कि हमारी देवनागरी लिपि यदि बहुत पुरानी नहीं तो २५०० वर्ष की पुरानी ज़रूर है।

जहांगीर के आत्मचरित का एक नमूना।

देहली के बादशाहों में से किसी किसी ने अपनी दिनचर्य्या भी लिखी है। बाबर, हुमायूं और जहांगीर की दिनचर्य्यायें बहुत प्रसिद्ध हैं। उनसे उनका और उस ज़माने का बहुत कुछ हाल मालूम होता है। इन दिनचर्य्याओं का अङ्गरेज़ी में अनुवाद भी हो गया है। इन्हें आत्म-चरित कहना चाहिए। इनमें से आज हम जहांगीर के आत्म-चरित का कुछ अंश नीचे प्रकाशित करते हैं।

"परमपिता परमेश्वर की कृपा से, ८ जमादि-उस्सानी, १०१४ हिजरी, को आगरा में एक बजे मुझे, ३८ वर्ष की उमर में, राज-सिंहासन प्राप्त हुआ। आगरा से थोड़ी दूर पर एक गांव सिकरी है। वहां शेख सलीम नामक एक फ़क़ीर रहता था। उसीके आशीर्वाद से मेरा जन्म हुआ था। इसलिए मेरे पिता ने मेरा नाम सुलतान सलीम रक्खा। परन्तु मैंने अपने पिता को सुलतान सलीम या महम्मद सलीम नाम से अपने को कभी पुकारते नहीं सुना। वे मुझे हमेशा "शेखो बाबा" कह कर पुकारते थे।

"जब मैं बादशाह हुआ तब मैंने अपना नाम बदल डाला। मैंने सोचा कि सुलतान सलीम नाम रखने से रूम के सुल्तानों का और मेरा नाम प्रायः एक हो जायगा। इससे नाम में गड़बड़ होने का डर है। बादशाहों का काम मुल्क को लेना और उस पर राज्य करना है। इस कारण मैंने अपना नाम 'जहांगीर' रक्खा। जिस समय मैं युवराज था, मैंने ज्योतिषियों के मुँह से सुन रक्खा था कि मेरे पिता के बाद नूरुद्दीन नाम का एक पुरुष बादशाह होगा। यह बात मुझे याद थी। इससे नूरुद्दीन शब्द को मैंने अपने नाम में जोड़ दिया। अतएव मेरा पूरा नाम हुआ 'नूरुद्दीन जहांगीर'।

"तख़्त पर बैठते ही मैंने सोचा कि सम्भव है मेरे न्यायाधीश प्रजा का उचित न्याय न करें; उनके मुक़दमों की उचित जांच न करें; या उनकी शिकायतों को न सुनें। इससे मैंने हुक्म दिया कि सोने की एक ज़ञ्जीर बाहर से क़िले के भीतर लाई जाय। यदि किसीको मेरे अधिकारियों के ख़िलाफ़ कुछ कहना हो, या यदि किसी पर कोई अन्याय हुआ हो, तो वह उस ज़ञ्जीर के एक छोर को खींचे। ज़ञ्जीर चार मन की हो और उसमें कई घण्टे बँधे रहें। वे क़िले के भीतर रहें और ज़ञ्जीर का दूसरा छोर बाहर। उसी छोर को खींच कर लोग मुझसे मिलने की इच्छा ज़ाहिर करें।

"मैंने बारह नियम बनाये और हुक्म दिया कि उनका अक्षरशः प्रतिपालन मेरी सल्तनत में हो। वे नियम ये हैं—

(१) "जिन लोगों के पास जागीरें हैं, उन्होंने अपने फ़ायदे के लिए लोगों की आमदनी पर कर लगा लिया है। यह कर अब न लिया जाय। इस तरह के और भी जितने कर थे, सब मैंने माफ़ कर दिये।

(२) "बहुत से रास्ते ऐसे हैं जिन पर चोरी और डाकेज़नी रोज़ हुआ करती है। कुछ रास्ते ऐसे हैं जिनसे बस्ती बहुत दूर है। मैंने हुक्म दिया कि ऐसे रास्तों के पास अच्छी अच्छी सराय और मसजिदें बनाई जायँ; कुवें खुदवाये जायँ और जहां गाँव न हों वहां गाँव आबाद करके लोगों को खेत और बाग़ वग़ैरह के लिए ज़मीन दी जाय।

(३) "मेरे राज्य में चाहे मुसलमान मरै चाहे काफ़िर, उसकी जायदाद उसके उत्तराधिकारी को मिलै। इसमें कोई अफ़सर या अधिकारी दस्तंदाज़ी न करै। यदि मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो, तो योग्य आदमियों की एक कमिटी बना दी जाय। वह उस जायदाद की देख भाल करै और मुसलमानी धर्मशास्त्र के अनुसार उसे काम में लावै—मसजिद और सराय बनवावै, टूटे फूटे पुलों की मरम्मत करावै और तालाब और कुवें खुदवावै।

(४) "मैंने १४ वर्ष की उम्र से अब तक, अर्थात् ३८ वर्ष की उमर तक, शराब पिया है।

तथापि शराब के, और नशे की जितनी और चीज़ें हैं उनके, तैयार करने और बेचने की मैंने मनाई कर दी। चढ़ती जवानी में मैं नशे का यहां तक ग़ुलाम था कि बीस बीस प्याला शराब मैं रोज़ पीता था। कुछ दिन बाद मुझे होश हुआ। तब मैं अपनी इस आदत को छोड़ने की कोशिश करने लगा। सात वर्ष की कोशिश से बीस से पाँच छः प्याले तक शराब पीना मैंने कम कर दिया। मैंने धीरे धीरे शराब पीने के समय में भी फेरफार किया। कभी दिन में, कभी रात में, कभी शाम को मैं पीने लगा। इस तरह करते करते जब मेरी उम्र ३० वर्ष की हुई तब मैं सिर्फ़ रात को शराब पीने लगा। अब मैं सिर्फ़ इसलिए पीता हूं जिसमें जो कुछ मैं खाऊं हज़म हो जाय और भूख अच्छी तरह लगे।

(५) "कोई आदमी किसी दूसरे के घर में ज़बरदस्ती न रहे, और न उसे वह बेदख़ल करसके।

(६) "चाहे कोई जैसा अपराध करे, उसके नाक कान न काटे जायँ, या और इसी तरह की अङ्ग-भङ्ग वाली सज़ा उसे न दी जाय। मैंने ख़ुद भी ईश्वर को साक्षी करके क़सम खाई है कि इस तरह की नाक-कान, हाथ, इत्यादि काटने की सज़ा देकर मैं किसी अपराधी का शासन न करूंगा।

(७) "ख़ालसा ज़मीन के अधिकारी और ज़मीदार वग़ैरह, प्रजा को उसकी ज़मीन से बेदख़ल करके, उसे अपने फ़ायदे के लिए, जोत बो न सकेंगे।

(८) "हर एक परगने में जितने ज़मीदार या ख़ालसा ज़मीन की मालगुज़ारी वसूल करनेवाले हैं, वे अपने इलाक़े में किसी आदमी से विवाह या और कोई सम्बन्ध, बिना मेरे हुक्म, न कर सकेंगे।

(९) "मैंने हुक्म दिया है कि जितने बड़े बड़े शहर हैं, उनमें शफ़ाख़ाने खोले जायँ और अच्छे अच्छे वैद्य या हकीम रखकर रोगियों की दवा पानी का बन्दोबस्त किया जाय। इस काम में जो ख़र्च हो वह शाही मालगुज़ारी से दिया जाय।

(१०) "हर हफ़्ते का पहला दिन विशेष दिन समझा जाय। अपने पिता की तरह मैंने भी हुक्म दिया है कि हर साल मेरे जन्म दिन (१८ रबि-उल-अव्वल) से कुछ दिन तक किसी तरह की हिंसा न की जाय, अर्थात् कोई जीव-जन्तु न मारे जायँ। बृहस्पति को मैं तख़्त पर बैठा हूं और रविवार मेरे पिता का जन्म दिन है। इस कारण हर हफ़्ते बृहस्पति और रविवार को बलिदान का मैंने निषेध कर दिया।

(११) "मैंने हुक्म दिया कि मेरे पिता के समय के जितने अधिकारी, जागीरदार और मनसबदार हैं, सब अपनी अपनी जगह पर बने रहेंगे। उनका काम देखकर कुछ दिन बाद मैंने उनकी तरक़्क़ी कर दी। अहदी लोगों की तनख़्वाह मैंने १० से १५ रुपये कर दी और घर के नौकर चाकरों की १० से १२। पिता के महल में जो स्त्रियां हैं, उनके नौकर चाकरों की तनख़्वाह भी मैंने बढ़ा दी। पिता के समय में सैयद मीरन नामक एक उच्चवंशीय मनुष्य एक धर्म्मसम्बन्धीय पद पर नियत था। मैंने उसे हुक्म दिया कि जो लोग दीन दुखिया और दयापात्र हैं उनको वह हर रोज़ मेरे पास लाया करे।

(१२) "जो लोग बहुत दिन से क़िले और जेल में क़ैद थे उनको मैंने छोड़ दिया है।

"तख़्त पर बैठने के बाद, एक अच्छे दिन, सोने, चाँदी और तांबे के सिक्के जारी किये जाने का मैंने हुक्म दिया। हर धातु के हर सिक्के का मैंने जुदा जुदा नाम रक्खा। हर सिक्के के एक तरफ़ अपने नाम से, और दूसरे तरफ़ ढाले जाने की तारीख़ से, सम्बन्ध रखनेवाला एक एक पद्य मैंने मुद्रित कराया। तख़्त पर मेरे बैठने की तारीख़ को कई आदमियों ने पद्य में वर्णन करने की चेष्टा की। सबके पद्य मैंने देखे। उनमें से अपने पुस्तकालय और चित्रशाला के अध्यक्ष मकतूब ख़ाँ का बनाया हुआ पद्य मुझे अधिक पसन्द आया।"

वानस्पतिक सज्ञानता।

क्या इन हरे भरे वृक्षों को, जिनके रङ्ग विरङ्गे वर्ण आँखों को आनन्दित करते हैं, जिनके सुमधुर सौरभ से संसार मोहित हो जाता है, ईश्वर ने वे शक्तियां और गुण नहीं दिये हैं जो अधम से भी अधम पशुओं में पाये जाते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में दो विरुद्ध सिद्धान्त माने जाते हैं। एक के अनुसार वृक्षों में प्राण है, ज्ञान है, और मनुष्यों की सी चेतनता है। दूसरे के अनुसार उनमें चेतनता आदि कुछ भी नहीं है।

पुराने समय के लोग प्रायः पहले सिद्धान्त को अधिक मानते थे। पुराणों के अनुसार मनुष्यात्मा वृक्षयोनि को भी प्राप्त हो सकती है। ऋणिया वृक्ष हुआ तो महाजन उसकी छाती चीर कर अपनी जड़ें फैलावेगा। कई पातक ऐसे हैं जिनका करनेवाला वृक्षविशेष का जीवन प्राप्त करेगा। यूनान देश में भी यही सिद्धान्त माना जाता था। इम्पीडाक्लीज़ (Empedocles) के मतानुसार वृक्षों में श्रेष्ठ दरजे का ज्ञान है। एग्रीजेण्टम (Agregentum) के मतानुयायी मानते थे कि (maudrake) तम्बाकू की जातिवाले एक प्रकार के वृक्ष में पूर्ण ज्ञान होता है। छोटा सा भी घाव होने पर यह वृक्ष रोता है—कराहता है। इस वृक्ष की पत्तियां आदि को एकत्र करनेवाले बड़ी सावधानी से इसके पास जाते थे। जादू और टोना भी उन्हें करना पड़ता था, जिससे इस वृक्ष का कराहना उनपर कुछ बुरा प्रभाव न डाल सके। अनेक तरह के टोटके इस वृक्ष के असर से बचने के लिये किये जाते थे। वृक्ष के आसपास तलवार की नोक से तीन लकीरें की जाती थीं। परन्तु मुँह पूर्व ही की ओर रहता था। साथ ही एक आदमी इस वृक्ष के चारो ओर नाचता और मन्त्रोच्चारण करता रहता था। तब वृक्ष में हाथ लगाया जाता था। ऐसेही ऐसे टोटकों के बाद वृक्ष काटा जाता था।

मण्ड्रागोरा (mandragora) नामक वृक्ष पुराने समय में बड़ा प्रसिद्ध था। कहते हैं कि यह वृक्ष सूली ही के स्थान में उगता था। मरे हुओं के शरीर से बनी हुई खाद इसका पोषण करती थी। पुराने लोगों का विश्वास था कि इसको काट कर कोई कुशल से नहीं रह सकता। इसलिए इस वृक्ष को उखाड़ने के लिये भी नाना प्रकार की तरकीबें करनी पड़ती थीं। एक सहल तरकीब यह थी कि एक कुत्ते को लोग वृक्ष की जड़ से बांध देते थे। फिर वे वृक्ष को उखाड़ते थे। ख़याल था कि सारी आफ़त कुत्ते के सिर आवैगी और उखाड़नेवाला साफ़ बच जायगा। उस समय के जादूगर लोग इस वृक्ष को काट छांट कर आदमी के पुतले के रूप में ले आते थे। फिर वे उससे जादू का काम लेते थे। उन लोगों का विश्वास था कि यह वृक्ष पहले मनुष्य के रूप का होता है। फिर वह वृक्षरूप में परिणत हो जाता है। कदाचित् इसी विश्वास के कारण इस वृक्ष का नाम अंथ्रोपोमोर्फोस (anthropomorphos) [Gr. Anthropos, man and morphe, form] पड़गया हो। यूनानी भाषा में अंथ्रोपास मनुष्य को कहते हैं और मोर्फे का अर्थ शक्ल है। इससे इस नाम का अर्थ हुआ आदमी की शक्ल। ग्रीस की पुरानी वृक्षविद्या की पुस्तकों में इस वृक्ष के चित्र भी दिये हुए हैं। उनमें पत्ते आदि तो साधारण वृक्षों के से हैं; परन्तु जड़ की सूरत मनुष्य या स्त्री की सी है।

ऐसे सिद्धान्तों को माननेवाले इस समय भी पाये जाते हैं। एडन्सन साहब (Adanson) का कथन है कि वृक्षों में आत्मा होती है। यही नहीं, यह आत्मा विभाजित भी हो सकती है, क्योंकि एक वृक्ष की शाखा (क़लम) काटकर दूसरी जगह लगाने से जम जाती है। इसीसे यह भी सिद्ध हुआ कि एक वृक्ष में कई आत्मायें होती हैं।

इसी प्रकार आजकल के और भी कई तत्ववेत्ता वृक्षों में ज्ञान—और ऊँचे दरजे का ज्ञान—होना बतलाते हैं। जर्मनी के एक तत्ववेत्ता यहां तक बढ़ गये हैं कि आपने वानस्पतिक मनोविज्ञान की नींव तक डाल दी है।

पुराने वृक्षों की भयावनी सूरत से डरकर पुराने समय के लोग उनकी पूजा करने लगे थे। उनका विश्वास था कि उनके तनों में मनुष्यों की आँख से छिपे हुए देवी देवता वास करते हैं। पुराने वृक्ष का भयावना खोंडर उनके चित्तों में धार्म्मिक भय का सञ्चार करता था। इस समय भी ऐसे विश्वासों ने मनुष्यजाति का पिण्ड नहीं छोड़ा है। जापान की किम्वदन्तियों में कहा जाता है कि कई शताब्दियों के पुराने देवदार नामक वृक्ष (Cedar) के काटने से वृक्ष में से ख़ून टपकने लगता है। इनमें मनुष्य और देवताओं की भांति आत्मायें हैं। कदाचित् इन्हीं विश्वासों के कारण आजकल भी जापान का लकड़िहारा रात को जङ्गल पार करते हुए बहुत डरता है।

भारतवर्ष में भी बरगद, नीम और पीपल की बड़ी महिमा है। इनकी पूजा होती है और इनकी स्तुति के श्लोक पढ़े जाते हैं। देवी देवता और भूत प्रेतों का घर भी इन पर माना जाता है।

इसके विरुद्ध, दूसरा सिद्धान्त अधिक प्रचलित है। वृक्ष निष्प्राण हैं। उनमें चेतनादि कुछ भी नहीं है। उन्हें केवल प्रकृति की कल समझना चाहिए। बस, यही इस दूसरे सिद्धान्त का सार है। डेकार्ट फ़्रांस का एक प्रसिद्ध तत्ववेत्ता होगया है। उसके मतानुसार मनुष्य के अतिरिक्त अन्य पशु कल के समान हैं। उनमें आत्मा नहीं; आत्मा का चिन्ह भी नहीं; इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, प्रयत्न और ज्ञानादि कुछ भी नहीं हैं। डेकार्ट के इस सिद्धान्त के माननेवाले भी बहुत हैं। हेल्स (Hales) आदि पदार्थवादियों (naturalists) के मतानुसार भी वृक्ष, प्राकृतिक नियमों के आधीन घड़ी आदि की तरह एक कल है।

परन्तु आज कल वैज्ञानिक संसार में इन दोनों में से एक भी सिद्धान्त नहीं माना जाता। वानस्पतिक जीवन न तो केवल एक साधारण भौतिक रासायनिक आभास (phenomenon) है और न मनुष्यादि की तरह उसमें मानसिक शक्ति ही है। हां, यह सत्य है कि वृक्षों में भी वही प्राणधारक शक्ति (vital force) है जो और सब जीवों में पाई जाती है। जब यह शक्ति जाती रहती है, तब वृक्ष भी मर जाता है। फिर और कोई उपाय उसे बचा नहीं सकता।

विशट आदि तत्ववेत्ताओं के मतानुसार पौधों में भी वही संचालिनी शक्ति और सज्ञानता है जो अनेक जानवरों में पाई जाती है।

बहुत से प्रयोगों के द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि पौधों की सज्ञानता मानवी चेतनता के समान है। बिजुली से वे मर सकते हैं और तम्बाकू की जातिवाले विषों (narcotic poisons) के प्रयोग से वे ज्ञानशून्य, लक़वे से सताये हुये मनुष्य की तरह संचालनशक्तिविहीन, हो जाते हैं, और मनुष्य ही की तरह वे निर्जीव भी हो जाते हैं। कुछ विशेष जाति के पौधों पर अफ़ीम छिड़कने पर वे सो भी जाते हैं। कई पण्डितों ने प्रयोग द्वारा जाना है कि प्रूज़िक एसिड (Prussic Acid) नामक एक प्रकार का तेज़ाब उतनी ही शीघ्रता से पौधे के शरीर में विष फैला देता है जितनी शीघ्रता से वह जानवरों का शरीर विषाक्त कर देता है। छुई मुई हाथ लगाते ही सिकुड़ जाती है। वानस्पतिक तन्तु आप से आप संकुचित हो जाते हैं। लेटूस नामक पौधे (Lettuce) की पत्तियों को नोक ज़रा छू दीजिये। आपसे आप उसके रस के दो चार बूँद बाहर निकल पड़ेंगे।

हमारी समझ यह रही है कि प्रयत्न आदि गुण केवल जानवरों ही में पाये जाते हैं। इधर उधर चलना फिरना और हाथ पैर हिलाना केवल जानवरों ही का काम है। यही कारण है कि वानस्पतिक कार्यों की तरफ़ हमारा ध्यान नहीं

गया है। पर यदि हम ध्यान देकर देखें तो पौधों की कार्यकुशलता पर हमें बड़ा आश्चर्य हो। बहुधा पौधों का वानस्पतिक प्रयत्न जानवरों के प्रयत्न से कहीं बढ़कर पाया जाता है। गर्मी के मौसम में तीसरे पहर किसी ग्रीनहाउस (सब्ज़ाघर) में जाइये जहां कैकटस ग्रैंडीफ्लोरस नामक अमेरिका का फूल (Cactus grandiflorus) अपनी लम्बी लम्बी टहनियों का जाल बनाये हुये फैला हो। इन टहनियों पर कहीं कहीं छोटी छोटी नुकीली गांठें आप देखियेगा। इनके सिवा और कोई अद्भुत बात आपको उस समय नहीं देख पड़ेगी। पर ज़रा ठहर जाइये। कोई साढ़े आठ बजने दीजिये। फिर देखिये कि क्या होता है। जब चारों तरफ़ सुनसान होगया, तब उसकी हर एक गांठ सुन्दर पुष्परूप में परिणत होगई। हर एक पुष्प की असंख्य श्वेत और पीत पखुरियां खिल गईं। उसका मुकुट, जिसमें कम से कम कोई पाँच सौ अति सूक्ष्म तन्तु होते हैं, अपने केन्द्र के चारों तरफ़ लहराने लगा। प्रत्येक फूल अति मधुर सौरभ निस्सारित करने लगा। उससे सारा सब्ज़ाघर सुगन्धित हो उठा। परन्तु यह जीवन का आतिशय्य केवल क्षणिक है। दो इञ्च के घेरेवाली गांठ एक फुट व्यासवाले पुष्प में परिणत हो गई सही। परन्तु जैसे यह पौष्य संसार का विचित्राभास कई मिनटों में आविर्भूत हुआ, वैसे ही कुछ ही देर बाद वह लोप भी हो गया। आधीरात के लगभग इस चमकीले और सौरभशाली फूल का प्रत्येक भाग मुर्झाने लगता है और झटपट नष्ट हो जाता है। किस जानवर में इतनी अधिक, पर क्षणभङ्गुर, शक्ति है? इस सुन्दर फूल ने इतनी देर के अल्प जीवनकाल में जो कुछ कर दिखाया, उतना कीड़े मकोड़ों से साल भर में भी सम्पादित हो सकने का नहीं।

छुईमुई जातिवाले वृक्षों में जितनी सज्ञानता और चेतनता पाई जाती है, उतनी औरों में नहीं। इसके किसी एक नन्हें से पत्ते को छू दीजिये। बस, सब पत्ते बन्द हो जायँगे। फिर सारी शाखायें एक एक करके पृथिवी की ओर झुक जायँगी और ऐसा मालूम होगा, माना पौधे के ऊपर बिजुली गिरी हो। सारा पौधा नई वधू की भाँति सहम जायगा। माना नवागन्तुक के आगे वह लजा रहा हो। इसीलिए ऐसे पौधों का नाम लज्जावती या लाजवन्ती रक्खा गया है।

यदि हम छुईमुई के पौधे की एक ही पत्ती पर एक बूँद तेज़ाब डाल दें तो सारा पौधा संकुचित हो जायगा। यदि उसकी एक ही पत्ती को तपावें तो उसकी सारी शाखायें और पत्तियां झुक जायँगी। आदमी की तरह माना सारा पौधा अपने दूर से भी दूर अवयव का दुःख अनुभव करता हो। जैसे अँगुली के पोर में कांटा लगने से मनुष्य का समस्त शरीर उछल पड़ता है, वैसे ही इस पौधे की एक पत्ती में अपरिचित आघात या स्पर्श होने से सारा पौधा कँप उठता है। इस पौधे में इतनी सज्ञानता है, जितनी बहुत जानवरों में भी नहीं पाई जाती। अमेरिका के उष्ण देश के मैदानों में जाते हुए एक यात्री ने देखा कि उसके घोड़े की टाप की आवाज़ ही पर सारे छुईमुई के पौधे सिकुड़ गये। माना डर से वे भयभीत हो गये हों। सूर्य की एक किरण अथवा आकाशस्थित एक छोटे से मेघखण्ड की छाया, इन पौधों में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न कर देती है।

इन तजरुबों से मालूम होता है कि वृक्षशरीर और पशुशरीर की बनावट एक सी है। परन्तु वृक्षशरीर में पशुशरीर की भांति तन्तुजाल (Nervous system) है या नहीं, यह प्रश्न अभी तक सन्दिग्ध है। यदि मान लें कि इनमें तन्तुजाल है, तो अच्छी से अच्छी ख़ुर्दबीन द्वारा देखने पर भी जानवरों की नसों के सदृश कोई वस्तु वृक्षशरीर में दिखलाई नहीं देती।

चाहे वृक्षशरीर में तन्तुजाल हो, चाहे न हो, परन्तु इसमें किसीको सन्देह नहीं कि छुईमुई के पौधे में मनुष्य के तन्तुजाल के सदृश कोई न कोई अवयव अवश्य है। इस पौधे पर विषों का असर

होना, उसका अफीम के प्रयोग से सो जाना, बिजुली के आघात से मर जाना, इत्यादि बातें पूर्वोक्त सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं।

सबसे अधिक अचम्भे की बात तो यह है कि छुईमुई का पौधा मनुष्यों की तरह अवस्था के अनुसार काम करना भी जानता है। जब धूप लगती है तब हम छाया में खड़े होते हैं। जब पानी बरसता है तब हम घर के भीतर घुस रहते हैं। इसी तरह यह पौधा भी, जिस समय जो आवश्यक होता है, करता है। एक महाशय इस पौधे को अपनी गाड़ी में रख लेचले। जब गाड़ी चलने लगी तब तो मानो उसकी गड़गड़ाहट के डर से पौधा सिकुड़ गया। पर थोड़ी देर बाद यह समझ कर कि वह गड़गड़ाहट कुछ हानिकर नहीं है, वह फिर अपनी प्रकृतावस्था में हो गया। परन्तु फिर जब गाड़ी ठहर गई, तब पौधा सिकुड़ गया, और थोड़ी देर तक सिकुड़ा ही रहा। मानो उसे गड़गड़ाहट के एकाएक बन्द हो जाने से कुछ भय की आशङ्का हुई हो।

बहुत से पौधे जीवनोचित सामग्री के संग्रह करने के लिए बड़े अद्भुत अद्भुत काम करते हैं। लथराई स्क्वेमेरिया (Lathræa squamaria) नाम का एक पौधा होता है। यह साधारण तौर पर पांच या छ इञ्च की उँचाई तक उगता है। एक बार यह पौधा एक खानि के तल में जम गया। पर खानि के भीतर प्रकाश और स्वच्छ वायु कहां? इसलिए इसको खानि के मुँह के ऊपर तक बढ़ना पड़ा। १२० फ़ीट ऊंचा उठकर इसने सूर्य के प्रकाश और खुले मैदान की स्वच्छ वायु का आनन्द लिया*।

सूर्यनारायण दीक्षित।

---

* दि यूनीवर्स (The Universe) नामक पुस्तक के आधार पर लिखित।

"ज़माना" और देवनागरी लिपि।

सरस्वती की किसी संख्या में हमने कानपुर से निकलनेवाले उर्दू के मासिक पत्र "ज़माना" का उल्लेख किया है। उसकी "जौलाई" की संख्या में उसके विद्वान् सम्पादक ने कई "इल्मी नोट्स्" दिये हैं। उनमें आप एक जगह कहते हैं कि "जस्टिस सारधाचरन साहब जज कलकत्ता हाई कोर्ट की तमाम मुल्क के लिए एक रस्मुलख़त क़ायम होने की तजवीज़ कामयाब होते नज़र नहीं आती"। आपकी राय है कि जो लिपि देवनागरी लिपि से कुछ भी समता रखती है, उसी के लिए नागरी लिपि का प्रयोग लाभकारी होगा। अरबी, फ़ारसी, उर्दू, तामील, तिलैगू और कनारी इत्यादि भाषायें यदि नागरी लिपि में लिखी जायँगी तो वे "अपनी असलियत से बहुत दूर जा पड़ेंगी"। क्यों? "एक ज़बान का लफ़्ज़ अपने असली इमला के तग़ैयुर व तबद्दुल से अपने असली मानी अदा करने से क़ासिर हो जाता है"। कोई उदाहरण दीजिए। "इसरार"। इस शब्द में साद भी है और सीन भी। मानी दोनों के अलग अलग हैं।

जिसका देश हिन्दुस्तान है और जिसने हिन्दू-कुल में जन्म लिया है, उसके मुँह से ऐसी राय निकलना बड़े अफ़सोस और बड़े आश्चर्य की बात है। देवनागरी लिपि में लिखीजानेवाली हिन्दी भाषा का "ज़माना" को इतना भी ज्ञान नहीं कि वह अपने एडिटर का नाम तक ठीक ठीक लिख सकता। "ज़माना" के टाइटिल पेज पर लिखा है—"मुरत्तबै दयानरायन निगम बी० ए०"। परन्तु हम लोगों के घर की बेपढ़ी स्त्रियां और बच्चे तक यदि "नारायण" नहीं तो "नारायन" ज़रूर कहते हैं। "ज़माना" की "जौलाई" की संख्या में एक जगह कायस्थ-पाठशाला का इम्ला "कायस्त पाटशाला" लिखा गया है। अतएव जो "ज़माना" अपने एडिटर का, देवनागरी लिपि के अनुसार, नाम तक शुद्ध शुद्ध लिखना नहीं

जानता; जो "ज़माना" कायस्थ-सम्पादित होकर भी कायस्थ को "कायस्त" लिखता है; जो "ज़माना" सारदाचरण (शारदाचरण न सही) ऐसे प्रसिद्ध हिन्दू नाम को "सारधाचरन" लिखता है,—उसे देवनागरी लिपि, या हिन्दी भाषा की योग्यता अथवा अयोग्यता, के विषय में राय देने का क्या मजाज़? जिसे देवनागरी में शुद्ध शुद्ध शब्दज्ञान तक भी न हो, वह यदि कहने लगै कि इस लिपि में "कायस्थ" या कायस्थकुलसूचक "कुलश्रेष्ठ" शब्द ठीक ठीक लिखे ही नहीं जा सकते, तो उसके लिए यह कितने बड़े साहस का काम होगा!

"ज़माना" से हमारी प्रार्थना है कि आपके "जौलाई" के नम्बर में "इसरार" के सदृश और कितने शब्द आये हैं जो हिन्दी में ठीक ठीक नहीं लिखे जा सकते। अथवा इसे जाने दीजिए, आप ऐसे शब्दों की एक सूची छाप दीजिए जिसमें माननीय सारदाचरण उनके नागरी में लिखने की कोई ऐसी युक्ति निकालैं जिसमें वे "अपने असली मानी अदा करने से क़ासिर न हो जायँ"। और यदि वे, या उनके पक्ष के समर्थक, कोई ऐसी युक्ति निकाल दें तो क्या आप अपने फ़ारसी-लिपि के पक्षपात को छोड़ने की कृपा करेंगे? "इसरार" नागरी में ठीक ठीक न लिखा जायगा, इससे आप नागरी लिपि को उर्दू लिखने के लायक़ ही नहीं समझते। पर जिस फ़ारसी लिपि में आप लिखे जाते हैं, उसमें आपके एडिटर साहब का नाम जो ठीक ठीक नहीं लिखा जा सकता, उसका भी आपने कभी ख़याल किया है? नहीं किया, तो अब कृपा करके कीजिए, और "नारायण" के ण को फ़ारसी-लिपि में लिखने की कोई तजवीज़ निकालिए। ठीक शब्द "नारायण" है "नरायन" नहीं। क्यों आप हिन्दू नामों की दुर्दशा करते हैं?

"इसरार" का इम्ला उर्दू में दो तरह का है। इसीलिए वह दो मानी देता है। नागरी में उसका इम्ला ठीक न लिखा जायगा! क्योंकि उसमें फ़ारसी के "स्वाद" का समकक्ष कोई वर्ण ही नहीं। इसीलिए नागरी लिपि उर्दू लिखने के लिए नालायक़ ठहरी। पर हम कहते हैं कि जिस अँगरेज़ी का बर्ताव आधी दुनिया में होता है, उसका काम कैसे चलता है? उसमें इयर (Ear), व्यल (Well) पैाण्ड (Pound) आदि शब्दों के दो दो क्या और भी अधिक मानी हैं। उनका इम्ला भी एक और उच्चारण भी एक। तिस पर भी अँगरेज़ीवाले, जहां जैसा मौक़ा होता है, वहां उनके वैसेही मानी समझ लेते हैं। शायद उर्दूवालों में किसी की बुद्धि इतनी तेज़ नहीं! इसीसे नागरी लिपि से इतनी प्रतिकूलता!

हम, ज़रा देर के लिए, माने लेते हैं कि देवनागरी में "इसरार" के सदृश शब्दों के लिखने की शक्ति नहीं। यदि उसके इतने ही ऐब के कारण "ज़माना" उसे त्याज्य समझता हो, तो हमारा विनय है कि वह थोड़ा सा स्वार्थ-त्याग (Self-sacrifice) करना भी सीखै। यदि थोड़ी सी तकलीफ़ उठाने से नागरी लिपि का देश भर में प्रचार हो सकता हो तो वह कृपा करके उसे उठाये; देशहित की तरफ़ अधिक ध्यान दे; अपनी तकलीफ़ की तरफ़ कम। थोड़ा छोड़ने से यदि अधिक मिलने की आशा हो तो थोड़े के लिये इसरार करना बुद्धिमान का काम नहीं। फ़ारसी लिपि मुसलमानों की जारी की हुई है। यदि देवनागरी से होनेवाले लाभ की तरफ़ ध्यान न देकर दुराग्रहवश मुसल्मान उसे न छोड़ें तो न सही। हिन्दू क्यों न छोड़ें? यदि "इसरार" या उसके साथी और ऐसे ही शब्द देवनागरी में लिखे ही न जा सकें तो उन्हें न लिखिए। देवनागरी अच्छी तरह सीखिये; कुछ कष्ट उठाइए; फिर ऐसी ऐसी दलीलें करने को आपका जो ही न चाहैगा। फिर आप इसरार को भी ठीक ठीक लिख सकेंगे।

इसी विषय के एक नोट में "ज़माना" के एडिटर साहब लिखते हैं—"जिसका नतीजा एक माहवार रिसाला है जो बँगला, तामिल, तलगू वग़ैरह वग़ैरह ऐसी ज़बानों को, जिनकी माख़ज़

हिन्दी है, हिन्दी हरूफ़ में पेश किया करैगा"। हमारी प्रार्थना है कि "तामिल, तलगू" की माख़ज़ (उद्गम) तो हिन्दी किसी तरह है ही नहीं; वह बँगला की भी माख़ज़ नहीं। बँगला और हिन्दी दोनों की माख़ज़ प्राकृत है। फिर "हिन्दी हरूफ़ कोई हरूफ़ नहीं"। हिन्दी नाम भाषा का है, नागरी नाम हरूफ़ का।

वाल्मीकि-रामायण और बौद्धमत।

वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड के १०८वें सर्ग में जाबालि मुनि ने रामचन्द्र से कहा कि आप व्यर्थ क्यों वन को जा रहे हैं? जाइए, अयोध्या में राज्य कीजिए। परलोक को किसने देखा है? इस लोक में, प्रत्यक्ष, जो बात आपको लाभदायक जान पड़े उसे ही कीजिए। इस नास्तिक-मत-विधायक उपदेश को सुनकर रामचन्द्र ने आस्तिक मत का पक्ष लिया और बहुत कुछ कह कर जाबालि की बातों का खण्डन किया। रामचन्द्र का कथन १०९वें सर्ग में है। इस सर्ग में ३९ श्लोक हैं। उनमें से ३४वां श्लोक यह है—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतन्नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्।

बुद्ध, अर्थात् बौद्ध, लोग चोर के समान हैं। तथागतों, अर्थात् बौद्धों, को नास्तिक समझना चाहिए। इसलिए बुद्धिमान् को उचित है कि जहां तक शक्य हो वह नास्तिक के सम्मुख न हो। उसका मुँह न देखे। रामायण की टीका में "तथागत" का अर्थ "तत्सदृश" और "नास्तिक विशेष" भी किया गया है। ऊपर के श्लोक के तीसरे चरण का अर्थ किया गया है—"प्रजा के अनुग्रह के लिए जिस बौद्ध का चोर के समान दण्ड किया जाना शक्यतम हो, उसे राजा वैसाही दण्ड दे जैसा चोर को दिया जाता है"। शायद यही अर्थ ठीक हो।

इस श्लोक के सम्बन्ध में सरदारशहर (बीकानेर) के रहनेवाले श्रीयुक्त गणपतिराय वैद्य ने नीचे लिखे हुए प्रश्न किये हैं—

(१) रामचन्द्र को हुए कितना समय हुआ? उनके समय में बौद्ध धर्म्म था या नहीं? यदि नहीं, तो रामचन्द्र ने उसका ज़िक्र क्यों किया?

(२) वाल्मीकीय रामायण कब बनी? रामचन्द्र के समय में या उनसे पीछे? यदि पीछे तो उस समय बौद्धधर्म्म था या नहीं?

(३) बौद्धधर्म्म का प्रचारक शाक्य मुनि (गौतम) था या और कोई? यदि गौतम था तो उसे हुए कितना समय हुआ? पुरावृत्त के पण्डितों ने जो गौतम का जन्म ईसा के ५५८ वर्ष पहले निश्चित किया है, वह ठीक है या नहीं? यदि ठीक नहीं है तो ठीक न होने का प्रमाण क्या है?

(४) पुराणों में रामचन्द्र विष्णु के सातवें और बुद्धदेव नवें अवतार माने गये हैं। वहां बुद्ध से मतलब गौतम बुद्ध से है या और किसी से? यदि और किसीसे है तो किससे और वह कब हुआ?

(५) शङ्कराचार्य्य, जिनका बौद्धों से वाद-विवाद हुआ था, कब हुए?

(६) पूर्वोक्त श्लोक वाल्मीकि का है या प्रक्षिप्त है? यदि प्रक्षिप्त है तो उसके मिलाने का कारण क्या?

इन प्रश्नों का यदि कोई सप्रमाण और सयुक्त उत्तर भेजैगा तो हम उसके लेख को सहर्ष प्रकाशित कर देंगे। पर लेख बहुत बड़ा न होना चाहिए।

पुस्तक-परीक्षा।

बाबू काशिनाथ खत्री की पुस्तकें। परलोकवासी बाबू काशीनाथ के पुत्र ने अपने पिता की बनाई हुई कई किताबें हमारे पास समालोचना के लिए भेजी हैं। उनमें से (१) नीत्युपदेश, (२) भारतवर्ष की विख्यात रानियों के चरित्र और (३) तीन मनोहर इतिहासिक (?) रूपक भी हैं। पहली पुस्तक

अंगरेज़ी के "सेल्फ़ कल्चर (Self-culture) का अनुवाद है। इसमें नैतिक, शारीरिक और बुद्धि-विषयक उन्नति करने के साधनों का वर्णन है। पुस्तक बहुत अच्छी है; सबके पढ़ने लायक है। सेल्फ़ का अर्थ है अपना और कल्चर का उन्नति, वृद्धि या सुधार। अतएव नहीं मालूम अनुवादक महाशय ने सेल्फ़ कल्चर का अनुवाद नीत्युपदेश किस तरह किया? बाक़ी दो पुस्तकें भी अच्छी हैं। वे विशेष करके स्त्रियों के लिए बहुत लाभकारी हैं। तीनों पुस्तकें बाबू केशवचन्द्र खत्री, सरसा, इलाहाबाद, को लिखने से मिलती हैं।

❁

श्रीरघुनाथशतकम्। पिपरपाती (गया) के रहने वाले पं० गङ्गाधर शर्म्मा ने इसे बनाया है और आपही ने "परिश्रम पूर्वक संशोधन करके" (सपरिश्रमं परिशोध्य) छपाया है। आपने एक और भी कृपा की है। आपने इस शतक की एक आलोचना भी खुदही लिख भेजी है। वह इस तरह है—

"१९६० सम्वत् में मैंने एक संस्कृत काव्य 'रघुनाथ शतक' नामक पुस्तक बनाया था, जिसको मुद्रित करा कर प्रायः सभी भारतवासी के घर में १-२ प्रति बिना मूल्य भेज दिया था, जिसका समालोचना का धूम एक बार वेंकटेश्वर, हिन्दीवङ्गवासी इत्यादि समाचारपत्रों में मचा था। उसीके द्वारा उस पुस्तक के चाहनेवालों के पत्र करीब करीब ५०-६० रोज़ हमें पढ़ना पड़ता था। अस्तु मैंने उसी पुस्तक को वर्तमान महाराजाधिराज रीवांधिपति के सेवामें उपहार-रूपेण भेजा। जिसके बदले महाराज ने 'राम-स्वयम्बर' भेज कर, अपनी उदारता तथा गुणशालिता और कविगुणदर्शिता का परिचय दिया था। उसके लिए महाराज को धन्यवाद है। यह वही पुस्तक 'रघुनाथ शतक' है। इसका एक प्रति आप के पास भी भेजता हूं। योग्य समालोचना अपनी पत्रिका में करके अनुगृहीत कीजियेगा।"

हम भी आप ही की लिखी हुई समालोचना प्रकाशित किये देते हैं। आपने बड़ी कृपा की जो समालोचना लिखने की मेहनत से हमें बचा लिया। इस लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। आप कहते हैं कि इस पुस्तक की एक दो प्रतियां प्रायः सभी भारतवासियों को आपने भेजी हैं। नहीं मालूम काशी के सिद्धेश्वर प्रेस ने कै करोड़ कापियां इसकी छापी हैं! यह भी नहीं मालूम कि सं० १९६० से अब तक (श्रावण शुक्ल, १९६२ तक) हमारी गिनती भारतवासियों में कवि जी ने क्यों नहीं की! पर तीस चालीस करोड़ कापियां बांटने में दो तीन वर्ष से कम समय भी तो नहीं लग सकता।

❁

खड़ीबोलीपद्यादर्श। श्रीश्यामजी शर्म्मा काव्यतीर्थ-कृत। दाम ४ आने। विनय, वसन्त, हर्ष, गुलाब, आशा, वर्षा, इत्यादि २६ विषयों पर बोल चाल की भाषा में कविता। इस पुस्तक की भूमिका पढ़ने लायक़ है। उसमें बोल चाल की भाषा को कविता की आवश्यकता दिखलाई गई है। पण्डित श्यामजी शर्म्मा ने इसी तरह की भाषा में एक २२ सर्ग का बृहत् काव्य बनाया है। उसका नाम है "श्यामहर्षवर्द्धन"। पर छपाई में रुपया ख़र्च होता है। उसके बिना यह काव्य अभी तक बे-छपा हुआ पड़ा है। बोल चाल की भाषा में कविता करनेवालों में शर्म्मा जी ने पहला नम्बर बाबू हरिश्चन्द्र को दिया है, दूसरा पण्डित अम्बिकादत्त व्यास को और तीसरा पण्डित श्रीधर पाठक को। चौथा शायद उन्होंने अपने लिए रक्खा होगा। क्योंकि पण्डित अम्बिकादत्त के समय में, आप कहते हैं, आप कालेज में थे। इस पुस्तक की कविता के विषय अच्छे और मनोरञ्जक हैं; पर कविता सरस नहीं। बोलचाल की भाषा की कविता का अभी आदर नहीं है। उसे देखते ही लोग नाक भौंह सिकोड़ने लगते हैं। इससे ऐसी कविता जहां तक रसवती और हृदयग्राहिणी हो अच्छा है। कविता अच्छी होने से लोग उसे ज़रूर

पढ़ेंगे ग्रैार धीरे धीरे व्रजभाषा की कविता के पक्षपात के। छोड़ देंगे। हम पं० श्यामजी के उद्योग ग्रैार उत्साह की प्रशंसा करते हैं। ग्राशा है, यदि ग्रभ्यास बना रहा, ते। कुछ दिनों में ग्राप बहुत ग्रच्छी कविता करने लगेंगे। ग्रापकी कविता में ग्रभी कई तरह के दोष देख पड़ते हैं। ग्रापके। उन्हें दूर करना चाहिए। नमूने के तैार पर ग्रापकी कविता का एक दूषित स्थल—

एक दिवस कुरसी पर बैठा
जब मैं पैर हिलाता था।
इधर उधर स्वभावही से
पुनि ग्रासमान के। देखाता था॥

इसमें दूसरी पंक्ति सदोष है। उसका वज़न ही ठीक नहीं।

❁

जोज़ेफ़ विलमट, पहला खण्ड। ग्रंगरेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक रेनल्ड ने जोज़फ़ विलमट नाम का एक उपन्यास बनाया है। यह उसीका ग्रनुवाद है। उपन्यास पूरा नहीं है; यह उसका पहला भाग है। इसके ग्रनुवादक ग्रैार प्रकाशक पं० चतुर्भुज ग्रैादीच्य ग्रैार यशोदानन्दन ग्रखैारी हैं। दाम ग्राठ ग्राना है। यह बहुत ही मनोरञ्जक उपन्यास है। इसमें यह विशेषता है कि पात्रों के चरित में ग्रति-रञ्जना बिलकुल नहीं है। इसके नायक विलमट का चरित मनुष्यमात्र के लिए ग्रादर्शरूप है। इसमें लण्डन के बदमाशों ग्रैार भिखारियों का चरित बड़ी योग्यता से चित्रित किया गया है। ग्रमीर ग्रादमियों के घर की ग्रनाचारता का भी इसमें ग्रच्छा चित्र है। उपन्यास होने ही के कारण यह उपेक्ष्य नहीं। यह मोल लेने, पढ़ने ग्रैार उपदेश ग्रहण करने लायक़ है।

❁

रसराजमहोदधि। यह वैद्यक ग्रन्थ है। इसके चार भाग हैं। उनमें से दूसरा, तीसरा ग्रैार चैाथा भाग कल्याण (बम्बई) के लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस से हमारे पास समालोचना के लिए ग्राये हैं। इसी प्रेस ने इस पुस्तक के। छपाया है। ग्रैार यही बेचता है। यह प्रायः संग्रह-ग्रन्थ है। इसके कर्ता पं० महावीरप्रसाद मालवीय, वैद्य, हैं। यह हिन्दी में है। यह संग्रह ग्रन्थ है। ग्रर्थात् इसमें चिकित्साविषयक बातें ग्रैार ग्रन्थों से उद्धृत करके लिखी गई हैं। पर एक जगह पुस्तककर्ता ने भूमिका में लिखा है कि इसमें नई कल्पनायें भी हैं। यह भी सच है, क्योंकि उसमें प्लेग की चिकित्सा का भी विधान है। चिकित्साशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों की ग्रालोचना सिर्फ़ चिकित्सक ही ग्रच्छी तरह कर सकते हैं। हम इतना ही कह सकते हैं कि इसकी रचना का क्रम, विषयों की विवेचना ग्रैार भाषा ग्रच्छी है।

❁

प्रभातसुन्दरी। यह उपन्यास है। बँगला के "कालापहाड़" नामक उपन्यास का यह ग्रनुवाद है। ग्रनुवादक इसके पं० मुरलीधर शर्म्मा, सोंधी टोला, लखनऊ, हैं। दाम ।॥) पृष्ठ १८१। मुसलमानों के द्वारा उड़ीसा-विजय के ग्राधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। इसलिए इतिहास ग्रैार गल्प—दोनों—इसकी कथा में मिश्रित हैं। पुस्तक के नायक प्रभात का स्वदेशप्रेम प्रशंसनीय है। इस उपन्यास से ग्रैार भी कई तरह की शिक्षायें मिल सकती हैं। पढ़ने में मन लगता है। पर भाषासम्बन्धिनी ग्रशुद्धियां बहुत हैं। रचना भी कई जगह ग्रस्वा-भाविक है। उदाहरण के लिए मेले में, हज़ारों ग्रादमियों के सामने, प्रभात का ग्रपनी प्रेमपात्री सुन्दरी के सिर के। ग्रपनी गोदी में रखना ग्रैार फिर दोनों का एक दूसरे के। देखते हुए ग्रांसू बहाना।

❁

प्रेमेश्वरविरददर्पण। बाबू रामनारायण ब्रह्मभट्ट (बछरावां, रायबरेली) कृत। इसमें द्रौपदी के चीर-हरण की लीला का वर्णन है। पुस्तक पद्य में है। कुछ पद्य प्राचीन हैं, कुछ कविजीने स्वयं बनाये हैं। कोई कोई पद्य ग्रच्छे हैं। सूरसागर में इस विषय के कई गीत हैं। वे करुणरस में डूबे हुए

हैं। नहीं मालूम इस पुस्तक में वे गीत क्यों नहीं रक्खे गये? संग्रह ही करना था तो संग्रहकार ने उनको क्यों छोड़ दिया?

❁

उन्नति का द्वार। मूल्य २ आने। लेखक, काशी के बाबू दुर्गाप्रसाद, बी० ए०, के विद्यार्थी सत्यदेव हैं। यह एक चालीस पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक है। पर बातें इसमें बहुत अच्छी कही गई हैं। उन सबका निष्कर्ष यह है कि सदाचार ही उन्नति का मूल है। इसमें जगह जगह पर अङ्गरेज़ी और संस्कृत के विद्वानों के अच्छे अच्छे वाक्यों के अवतरण हैं। अँगरेज़ी के तो इतने हैं कि प्रायः एक भी पृष्ठ उनसे खाली नहीं।

❁

मूर्तिमार्तण्ड। श्री प्रियतमलाल-गोस्वामि-कृत। राजपूत एंग्लो-ओरियण्टल प्रेस, आगरा, में मुद्रित। दाम ॥) इसका विषय इसके नाम ही से झलकता है। इसमें श्रुति, स्मृति, उपनिषद् और गीता आदि के प्रमाणों से मूर्तिपूजा शास्त्रसिद्ध साबित की गई है।

❁

राधाकृष्ण का फ़ोटो। जयपुर में रंगीन चित्र अच्छे बनते हैं। एक चित्रकार ने राधाकृष्ण का एक बड़ा चित्र बनाया है। चित्र आदमी के क़द का है। लक्ष्मीनारायण फ़ोटोग्राफ़र ने उसीका फ़ोटो लिया है। उसे ही पं० रामनिवास भात्रा, गंगापोल, जयपुर, ।) में बेचते हैं। फ़ोटो कार्ड साइज़ का है। विक्रेता महाशय कहते हैं कि उनके पास बड़े आकार के भी फ़ोटो हैं। दाम उनके आकार के अनुसार हैं। आपकी राय है कि--'आज कल के लोग गृहशोभा में जो मेमों की तसवीर लटकाते हैं उनके बदले यह सबही तरह से उपयोगी है"। फ़ोटो में कदम्ब के नीचे राधाकृष्ण के आश्लिष्ट रूप का दृश्य है।

एम, एल, वसु एण्ड कोम्पनीका कृत
लक्ष्मीविलास
महोपकारी सुवासित तैल।

यह बाल को बढ़ाता है और उसके जड़को मज़बूत करता है, सिर की बीमारियां बसबब गरमी के या कफ़ घुमरी और मग़ज़ के भीतर की गरमी उसके लगाने से छूट जाती हैं। यह तेल खोपड़ी की खुजलाहट को चङ्गा करता है और आगे बाल को भूरा होने से रोकता है। और ज़ख़मी बीमारियां जैसे फुनसी खुजली वगैरह को आराम करता है। यह वायु और हाथ पैर के जलन को दूर करता है।

यह तेल सिर को ठण्डा रखता है और नज़र की रोशनी को बढ़ाता है। और दिमाग़ी ताकत को मज़बूत करता है और सब क़िस्म की बीमारियों पर असर पहुंचाता है। जो लोग दिमाग़ से काम लेते हैं उनके लिये यह तेल बहुत फ़ायदामन्द है। कई होशियार डाक्टरों ने इसके मसालों को जाञ्च कर इसे बनाया है। दाम आठ औंस वाले बोतल का बारह आना और चौबिस औंस वाले बोतल का दो रुपया अलावे ख़र्च पारसल और महसूल डाक।

मिलने का पता—

मोती लाल बोस एण्ड कम्पनी,

१२२ नं० पुराना चीनाबज़ार स्ट्रीट,

कलकत्ता।

आलोक चित्रण

अथवा

फोटोग्राफी!

मूल्य ।-) डा० म०)॥

व्यवहारपत्रदर्पण

इसमें वर्तमान नियमों के अनुसार अदालती काग़ज़ात एकत्र किए गए हैं और एक अच्छे वकील महाशय की सहायता से यह ठीक किया गया है। भाषा इसकी वही रक्खी गई है जो अदालतों में लिखी पढ़ी जाती है। यदि आप स्वयं अदालती कार्य सुगमता से किया चाहें तो इसकी एक प्रति अवश्य मंगवाइए। ज़मीदारी, दीवानी, माल, फौजदारी, म्युनिसिपेलिटी आदि मुहकमों की कारखाई के उपयोगी काग़ज़ात के लिखने पढ़ने का अभ्यास इससे आप को बहुत शीघ्र हो जायगा।

मूल्य आठ आने। डाक महसूल अलग। किताब बेचने वालों और दस प्रतियां एक साथ लेनेवालों को उचित कमीशन दिया जायगा।

यह पुस्तक उर्दू में भी मिलती है। मूल्य ॥)

पता—इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती सरस्वती सरस्वती

सरस्वती सचित्र मासिक पत्रिका हिन्दी की सब मासिक पत्रिकाओं में श्रेष्ठ है। यह प्रतिमास प्रयाग से प्रकाशित होती है।

वार्षिक मूल्य ३)

रामचरितमानस रामचरितमानस

गोस्वामी तुलसीदासजी कृत और काशीनागरीप्रचारिणीसभा का शोधा हुआ

क्षेपक रहित ! क्षेपक रहित !! क्षेपक रहित !!!

मूल्य ८) डाक महसूल १=)

इससे बढ़कर रामायण आज तक कहीं नहीं छपा है।

भारतमित्र—शनिवार, ता० २ जनवरी, सन् १९०४।

सचित्र रामचरितमानस जिसके छपने की बहुत दिन से धूम थी इण्डियन प्रेस प्रयाग से छपकर प्रकाशित हो गया। तुलसी कृत रामायण का इतना सुन्दर एडीशन अबतक भारतवर्ष में न छपा था। इसकी छपाई सफाई और कागज़ को देखकर जो मोहित हो जाता है। कोई ८०० पेज में यह पूरा हुआ है। बहुत से अच्छे अच्छे चित्र दिये गये हैं। मूल्य है आठ रुपये। पुस्तक संग्रह करने के योग्य है।

सरस्वती और रामचरितमानस

दोनों एक साथ मँगवाइएगा तो ११) की जगह ९) लिये जायँगे। दो रुपए छोड़ दिए जायँगे। डाक महसूल १=)

मिलने का पता,

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

रामचरितमानस

के प्रेमी सब ही जगह हैं। परन्तु सब लोग ८) देकर हमारा प्रकाशित मानस रूपी अमृत का स्वाद नहीं ले सकते हैं। इस लिये साधारण मनुष्यों के सुविधा के लिये वही रामचरितमानस ४) में देने का प्रबन्ध किया गया है। बिलकुल वही बात,–वही छपाई, वही शुद्ध तुलसीकृत क्षेपकरहित दोहे चौपाई, वही काग़ज़—दिया जायगा जो ८) देनेवालों को दिया जाता है। सिर्फ़ उतना बढ़िया जिल्द और वे चित्र नहीं दिये जायँगे। जो लोग समर्थ हैं, जो अपने पुस्तकालय की शोभा बढ़ाना चाहते हैं, वे अब भी पहले की तरह, बढ़िया सुनहरी-रुपहली बाइडिङ्ग और फोटो-चित्रों से सजा हुआ रामचरितमानस ८) दाम देकर मंगवा सकते हैं। परन्तु जो लोग राम नाम के भूखे हैं, जो लोग तुलसीदास के प्रेमप्रवाह का मोक्षफलदायी मीठा रस पीने के प्यासे हैं, उनका मतलब सिर्फ चार रुपये में ही निकल जायगा। इसलिये तुरन्त चार रुपए भेजिये, और इस बढ़िया शुद्ध क्षेपकरहित रामचरितमानस को मंगवा लीजिए। चार रुपये में भी यह महंगा नहीं है। इसे न मंगवाइएगा तो पीछे पछताना पड़ेगा।

डांक महसूल अलग देना पड़ेगा।

मिलने का पता—

मैनेजर, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

मुफ़ !! बिच्छू की दवाई !!

बिच्छू की अकसीर दवाई का नोमुना मुफ्त मँगाने वाले हरेक को एक २ नया साल की दायरी बुक उपहार में भेजी जाती है खर्च के लिये एक आना की टीकोट भेजना।

पता—जसमाईन इण्डिया एजेन्सो.

कालवादेवीरोड—बम्बई

डाकृर प्रियनाथ चटर्जी का

सुधा सिन्धु।

मलेरिया, बुखार, जूड़ी, अन्तरा, तिजारी, तिल्ली और लिवर को हमेशा के लिये बिलकुल आराम करता है। आराम हो जाने के बाद पीया जावे तो भूख बढ़ाता है और ताकत लाता है। इस दवा की नकल बाज़ार में हो रही है। असली

सुधा सिन्धु।

को पहचानने के लिये बङ्गला में "सुधा सिन्धु" "प्रियनाथ चटर्जी" का नाम और "रजिस्टरी नम्बर ४०८" अङ्गरेज़ी में देख लेना। बड़ा बोतल १।) छोटा बोतल ॥।)

पैकिङ्ग व महसूल अलग।

डाकृर प्रियनाथ चटर्जी का

शान्ति रस।

खाज, दाद और दूसरी चमड़े पर की बीमारियों के लिये। दाम एक शीशी ६ आने। एक दरजन चार रुपये। पैकिङ्ग व महसूल अलग।

पता—बाबू किशोरीलाल चटर्जी—नं० ४, दहियाहट्टा स्ट्रीट,
बड़ा बाज़ार—कलकत्ता।

(विज्ञापन)

स्त्रीशिक्षाशिरोमणिः

इसका गुण नामार्थ ही से जानिये। यह पुस्तक ग्रहस्त मात्र को अपने घर रखनी चाहिये। मूल्य ॥) डा० म० -)

पता—प० रामचन्द्र शर्म्मा,
नौरंगाबाद,
अलीगढ़।

गुलिस्तां के आठवें बाब

का हिन्दी अनुवाद

उपदेश कुसुम

भाषा गद्य और पद्य में, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत। मूल्य दो आना। डाक महसूल आध आना।

पता—इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

National Library,
Calcutta-27.

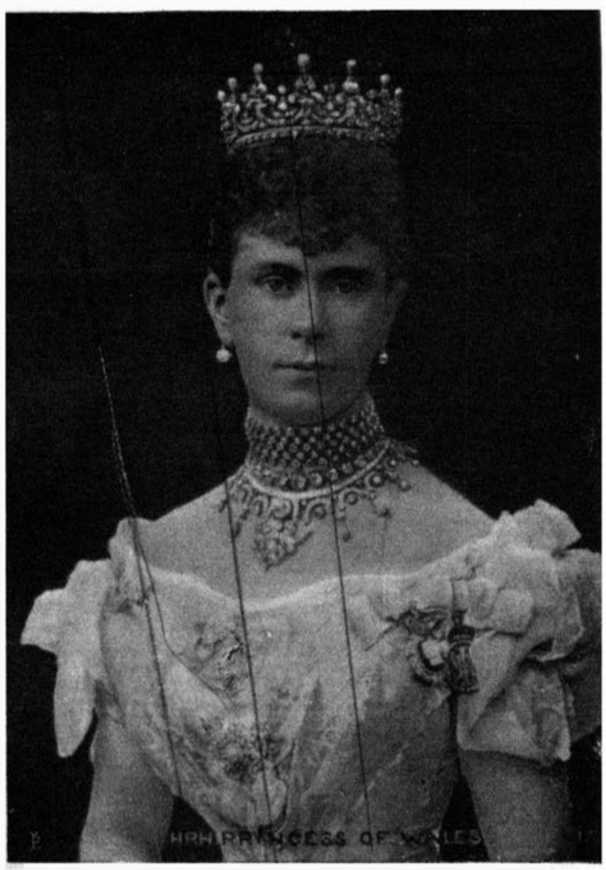

श्रीमती प्रिंसेस ऑफ वेल्स ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] नवम्बर, १९०५ [संख्या ११

विविध विषय।

इस महीने युवराज "प्रिंस आफ़ वेल्स" और युवराज्ञी "प्रिंसेस आफ़ वेल्स" का आगमन इस देश में है। इसलिए उनके चित्र हम इस संख्या के साथ सरस्वती के पाठकों को भेंट करते हैं।

***

अध्यापक जगदीशचन्द्र वसु ने विज्ञानशास्त्र में बड़ा नाम पैदा किया है। उन्होंने जड़ में भी जगदीश की सत्ता का सबूत देकर संसार को चकित कर दिया है। अब उन्होंने एक नया आविष्कार किया है। उन्होंने साबित किया है कि प्राणिमात्र की तरह पौधों में सचेतनता ही नहीं है, किन्तु उनमें सुख-दुःख के अनुभव करने की शक्ति भी है। उनमें नाड़ियां हैं; हृदय है; ज्ञानतन्तु हैं। अतः उनको मनुष्य की तरह प्रायः सब तरह के भले-बुरे भावों का ज्ञान होता है। उनको काटने-छांटने से पीड़ा होती है और अच्छी तरह रखने से सुख। पौधों की सज्ञानता के विषय में एक लेख सरस्वती की गत संख्या में प्रकाशित हो चुका है।

***

बनारस के पादरी एडूविन ग्रीव्स साहब ने जो नई तरह के कैथी-अक्षर निकाले हैं, उनको आपने एक छोटी सी, आठ नौ पृष्ठ की, पुस्तक के आकार में अलग प्रकाशित किया है। इसमें वर्णमाला और संयुक्त वर्णों के सिवा दो तीन छोटे छोटे सबक़ भी हैं। शुरू में एक छोटी सी भूमिका भी अङ्गरेज़ी में है। इसे कैथी की प्राइमर कहना चाहिए। आध आने का टिकिट पाने पर पादरी साहब इसे मुफ़्त देते हैं। हमारी राय में आपकी इस कैथी-लिपि की, इस समय, कोई ज़रूरत नहीं।

***

एक तरफ़ देश के हितचिन्तक हिन्दुस्तान भर में एक-भाषा और एक-लिपि के प्रचार की कोशिश कर रहे हैं। दूसरी तरफ़ कुछ लोग अपने अपने प्रान्त की बोलियों को तरक़्क़ी देने के इरादे से नये नये काम कर रहे हैं। गत श्रावण से

"मिथिलामोद" नाम का एक मासिक पत्र बनारस से मैथिली बोली में निकलने लगा है। मानों, मिथिला वालों के लिए हिन्दी कोई विदेशी भाषा हो; उसे वे बिलकुल ही न समझ सकते हों। यदि इसी तरह, भोजपुरिया, बनारसी, बैसवारी, बुंदेलखण्डी और अवधी आदि भिन्न भिन्न बोलियों में पुस्तकें, अख़बार और मासिकपत्र निकलने लगेंगे, तो बेचारी हिन्दी कहां जायगी, नहीं मालूम। "मिथिलामोद" में संस्कृत, हिन्दी और मैथिली में समस्यापूर्तियां भी छपती हैं। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी भी इसकी समस्याओं की पूर्तियां करते हैं। इस पत्र के पहले अङ्क के "अद्भुत-समाचार" नामक लेख की नक़ल हम नीचे देते हैं। उससे पाठक जान जायँगे कि मैथिली बोली कैसी होती है।

"अद्भुत-समाचार"।

"गोरखपुर-सेमरी गाम क मालिक गोरखपुरवासी मुखतार रघुनाथसहाय कैँ राति मैँ स्वप्न भेलन्हि जे तोँ शिवालय बनबाबह। ओ व्यक्ति शिवालय बनबौलन्हि ओ शिवालय क समीप मैँ एक पोखरि कोड़ौलन्हि। गत आषाढ़ शुक्ल ७ रवि दिन ५ बजे पोखरि क पानि मैँ रूपा क थारी सन एक वस्तु बहार भय पुन ओही में डूबि गेलैक। १ घण्टा क अनन्तर ४ वा ५ हाथ जल दूध सन भय ताहि स्थान सँ प्रायः १सय पैर नाम एक हाथ चाकर दूध क रास्ता बनि गेलैक। दोसर दिन प्रातःकाल ८ बजे ताहि स्थान मैँ बेलपात बहार भेलैक। अनन्तर एक शिवलिङ्ग पानि क उपर आबि पुन डूबि गेलाह। १ घण्टा क अनन्तर बहुत पैघ बेली क फूल पानि सँ बाहर भय आब लागल। ताहि समय पोखरि क पानि १ हाथ बढ़ि गेलैक। फूल अनेक बेरि पानि सँ बहार भय २ डूबि गेलैक। जखन फूल बहराइत छलैक पोखरि भरि महामहि होइत छलैक। ई आश्चर्य देख क हेतु बहुत लोक एकट्ठा भेल। भीड़ में रूँ एक ब्राह्मण पानि मैँ पैसि ताक लगलाह जनिका एक विलक्षण नर्मदेश्वर का मूर्त्ति भेटलथिन्ह। जे एक भाग मैँ बाघ क चाम, जटा सँ गङ्गा बहराइत यज्ञोपवीत सँशोभित छथि। एक त्रिकोण माथ मेँ रामानन्दी चानन ओ कारी जटा एहि सभहि सँ सुशोभित मूर्त्ति आषाढ़शुक्ल १३ शुक्र दिन शिवालय मैँ स्थापित भेलाह। मूर्त्ति क नाम श्रीजलेश्वरनाथ।"

क्या इसमें कही गई बात सच है?

* * *

अमेरिका के पुरुषार्थी पुरुष अब बड़े बड़े मकानों को जड़ से उखाड़ कर दूसरी जगह रख देने लगे हैं। जब किसी कारण से कोई जगह किसी को पसन्द नहीं आती तब वह वहां पर बने हुए अपने मकान को भी जहां वह जाता है उठा ले जाता है। वहां की एक रियासत का नाम डकोटा

है। वहां एक बैंक था। कुछ दिन हुए वह वहां से उखाड़ कर १५ मील दूर एक दूसरी जगह पर रख दिया गया। बैंक की इमारत उठा कर पहले बड़ी बड़ी गाड़ियों पर रक्खी गई। फिर वे गाड़ियां बेलनों पर चढ़ाई गईं। गाड़ियों में आगे और दाहने बायें बहुत से घोड़े जोत दिये गये। बस, उन्होंने खींच कर बैंक को इच्छित स्थान पर पहुंचा दिया। याद रखिए बैंक की इमारत ख़ाली नहीं थी। उसकी चीज़ वस्तु सब उसीके भीतर थी। यही नहीं, बल्कि उसके कुछ कर्म्मचारी भी यह तमाशा देखने के लिए उसके भीतर थे। कानसस रियासत की कचहरी भी इसी तरह १० मील दूर हटा दी गई। पर इस बार घोड़ों से नहीं काम लिया गया; यञ्जिन लगाया गया। बेलनों के ऊपर गाड़ियां रखकर इमारत पहले उन पर लादी गई। फिर रेल की पटरी बिछाई गई। उसी पटरी पर गाड़ियां चढ़ा दी गईं और यञ्जिन उन्हें खींच ले गया। एक दिन में यह सब हो गया और न कोई दुर्घटना हुई, न कुछ नुक़सान।

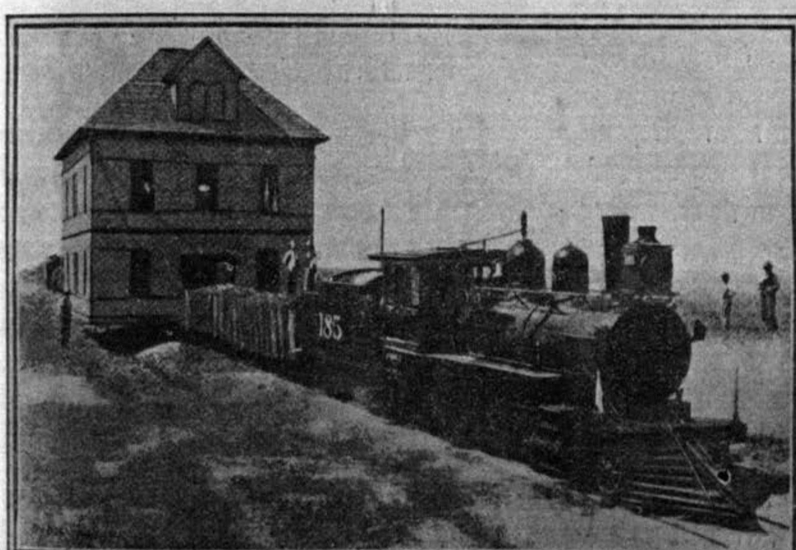

***

बनारस के भारतजीवन प्रेस का एक सूचीपत्र हमारे पास पहुँचा है। उसके भीतर छपे हुए काग़ज़ के तीन टुकड़े हैं। एक में कथासरित्सागर का विज्ञापन है; दूसरे में "भारतजीवन कारख़ाना" की घड़ियों का विज्ञापन है; पर तीसरे में जो कुछ है, कहते नहीं बनता। उसके ऊपर-नीचे अँगरेज़ी में "Strictly private" (अत्यन्त गोपनीय) और दाहने-बांये "For only private use" (सिर्फ़ गुप चुप इस्तेमाल के लिए) छपा हुआ है। विज्ञापन के नीचे "रामकृष्ण वर्म्मा, भारतजीवन प्रेस, बनारस" विराजमान है। अब तक अनेक प्रकार के व्यवसाय करके भारतजीवन की मनस्तुष्टि नहीं हुई; इस लिए अब गोपनीय गुटिका और तेल बेचने की आपने ठानी है। इस विज्ञापन को पढ़ कर बड़ा अफ़सोस हुआ। संसार में धनैषणा एक ऐसी चीज़ है कि जिसके कारण कोई कोई मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा और गौरव को भी कभी कभी भूल जाते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय करना बुरा नहीं; पर ऐसा व्यवसाय कोई करै क्यों जिसके विज्ञापन में "अत्यन्त गोपनीय" लिखने की ज़रूरत पड़े? और करै तो खुले ख़ज़ाना करै।

***

इलाहाबाद, म्योर सेंट्रल कालेज, के संस्कृताध्यापक श्रीगङ्गानाथ झा, एम० ए०, "रामायण और बौद्धमत" के विषय में यों लिखते हैं—

"वाल्मीकि-रामायण और बौद्धमत के प्रसङ्ग हमको इतना ही कहना है कि आजकल के प्रसिद्ध बौद्धमत के प्रवर्तक जो शौद्धोदनि बुद्ध हुए हैं उनका समय जीज़स से पहिले पांच सौ कई वर्ष

माना जाता है। परन्तु इनके पहिले भी बहुत से 'बुद्ध' हो गये हैं। यह बात बौद्ध 'जातकों' में प्रसिद्ध है। इनके समय के प्रसङ्ग कुछ कहना वृथा कपोलकल्पना होगी। इससे रामचन्द्रजी के बौद्ध-मत चर्चा करने में किसी प्रकार का दोष नहीं पड़ता"।

***

सरस्वती के विषय में उर्दू के सुलेखकों और मासिक पत्रों की भक्ति प्रतिदिन बढ़ती जाती है। कोई उसकी गुप्त पूजा करते हैं, कोई प्रकट। पर गुप्त-दान की तरह गुप्त पूजा का माहात्म्य अधिक है। इससे उसीकी तरफ़ लोगों का विशेष झुकाव है। ऐसे गुप्तागुप्त भक्त कितने हैं, ठीक मालूम नहीं। किसी किसी की भक्ति तो इतने ऊंचे दरजे तक पहुंच गई है कि भेद-भाव बिलकुलही जाता रहा है। वे सरस्वती की चीज़ को सर्वथा अपनी समझने लगे हैं। "ज़िन्दा-दिल" नाम का उर्दू-मासिक पत्र, ९ महीने से, कानपुर से, निकलने लगा है। वह बाबू "नानकपरशाद" बी० ए० के एहतमाम से प्रकाशित होता है। श्रीयुक्त "अम्बिका परशादसिंघ वासिल बनारसी" इस जीते जागते दिल वाले पत्र के एक लेखक हैं। आप सरस्वती के अनन्य और भेदभाव-रहित भक्त हैं। इस पत्र के सेप्टेम्बर के अङ्क में आपका एक लेख छपा है। लेख का नाम है "हमारा जिस्म।" यह लेख एप्रिल १९०४ की सरस्वती में प्रकाशित, श्रीयुत महेन्दुलाल गर्ग के "हमारी देह" नामक लेख की नक़ल है। विशेषता इसमें इतनी ही है कि संस्कृत-शब्दों की जगह फ़ारसी-अरबी शब्द रख कर भाषा उर्दू महाचिरे की कर दी गई है; जो शब्द समझ में नहीं आये वे या तो छोड़ दिये गये हैं या उनका अनुवाद कुछ का कुछ कर दिया गया है; और कहीं कहीं पर, विशेष करके जहां हिन्दुसे थे, और भी कई ग़लतियां होगई हैं। इसके कहने की ज़रूरत नहीं कि भेद-भाव-हीन भक्ति होने के कारण, लेखक ने सरस्वती की चीज़ अपनी ही समझ कर, सरस्वती का नाम बतलाने की तकलीफ़ नहीं उठाई। सरस्वती को सर्वथा अपनी ही समझनेवाले इन भले मानसों को उनका यह अपूर्व भक्ति-भाव मुबारक हो! "आर्य्य-समाचार" भी कानपुर से उर्दू में निकलता है। उसके गत अङ्क में सरस्वती के "प्रतिभा" नामक लेख का रूपान्तर फ़ारसी अक्षरों में छपा है। पर लेखक, बाबू खुशीलाल वर्म्मा, ने सरस्वती का स्मरण कर लिया है। मालूम होता है, आपको ऊंची भक्तिवाले सम्प्रदाय में जाना पसन्द नहीं।

श्री आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती।

केरले सशलग्रामे विप्रपत्न्यां मदंशतः।
भविष्यति महादेवि शंकराख्यो द्विजोत्तमः॥
शङ्करदिग्विजय।

उक्त श्लोक यद्यपि शिवमूर्ति श्रीशङ्कराचार्य्य के सम्बन्ध में है, तथापि उसे हम इस लेख के सिरे में दिये जाने के लिए अनुकूल पाते हैं। पुराण-प्रख्यात पवित्र मलय-भूमि ही केरल प्रान्त है, जिसका वर्तमान नाम कनारा है और जिसमें प्राचीन काल में कदाचित् मलाबार देश भी समाविष्ट था। प्रसिद्ध अगस्तकूट से जन्मी हुई ताम्रपर्णी नदी के तट पर वर्तमान् तृणवल्ली ज़िले में सशल ग्राम है, जो परम कर्म्मठ और धर्मिष्ठ ब्राह्मणों की बस्ती है। उसीमें श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य अष्टाङ्गयोगी श्री-आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती का जन्म हुआ था। इनका पूर्व नाम "शङ्कर" था*।

* दक्षिण में समय समय पर अनेक विद्वान् महात्मा और योगी होते आये हैं। उस दिन हमने एक मराठी मासिक पुस्तक में पढ़ा कि धारवार ज़िले के हावेरी गांव में, कुछ दिन हुए, एक योगी ने प्रायः एक महीने की समाधि, एक कोठरी के भीतर, लगाई। उसमें किसी चीज़ के आने जाने का मार्ग न था। समाधि खुलने पर देखा गया कि योगी के केश बिलकुल न बढ़े थे। पर शरीर की कांति विशेष तेजःपुञ्ज थी। स० सं०।

गत ग्रीष्मकाल में एक रात को हमको समाचार मिला कि गङ्गा-किनारे "भगवतदास के घाट" पर एक योगी पधारे हैं, जो अष्टाङ्गयोगी भी हैं, और राजयोगी भी। यह समाचार हमको उस समय मिला जब हम "गीतागोष्ठी" में बैठे हुए वेदान्त-विषय ही का विचार कर रहे थे। तत्काल ही ऐसे महात्मा के दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर और उपस्थित मित्रों समेत चल कर हम उक्त घाट पर पहुँचे। हमने देखा कि स्वामीजी समाधि की अवस्था में विराज रहे हैं। उस अवस्था के दर्शन से हम लोगों को जो हर्ष हुआ वह अकथनीय है। उस समय वह घाट प्रायः निर्जन था। इसीलिए स्वामी जीने खुले स्थान में समाधि लगाने में कोई हानि न समझी थी। परन्तु दूसरे दिन से वहां दर्शकों की भीड़ होने लगी और स्वामी जी समाधि के लिए एकान्त में बैठने लगे, जिससे उस अवस्था का प्रत्यक्ष दर्शन सर्वसाधारण को अलभ्य हो गया; क्योंकि समाधि का लगाना एकान्त ही के लिए विहित है।

स्वामी जी की अवस्था इस समय केवल ३१ वर्ष की है। जब उन्होंने सन्यास धारण किया था, उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। ऐसे तरुण योगाभ्यासी का समाधि-सिद्धि प्राप्त कर लेना किसी अंश में आश्चर्य्यजनक कहा जा सकता है; परन्तु उनके जन्म की कथा सुनकर यह आश्चर्य्य दूर हो जायगा। इसीलिए हम साधु-चरित-प्रेमियों के लिए वह कथा अति संक्षेप से लिखते हैं।

सशल ग्राम में हरिशंकर घनपाठी नाम के एक धनिक ब्राह्मण हैं। उनके पचास वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई। उस समय उनका तीसरा विवाह हो चुका था। एक बार वह अपने पूज्य गुरु श्रीविश्वेश्वर सरस्वती जी के पास गये, जो उस प्रान्त में योग की बड़ी से बड़ी सिद्धियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

उन्होंने "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" इत्यादि वाक्यों के अनुकूल अत्यन्त विनीत भाव से अपना पुत्र की अप्राप्तिजात शोक निवेदन किया। गुरुजी ने उनको सोमयज्ञ करने की आज्ञा की और भविष्यवाद किया कि उनके तीन पुत्र होंगे, जिनमें से मध्यम पुत्र को उन्हें सन्यास के लिये दे देना होगा। हरिशङ्करजी ने सात लक्ष मुद्रा व्यय करके विधानपूर्वक सोमयज्ञ किया और ईश्वर की कृपा से उनके तीन पुत्र हुए। मध्यम पुत्र का नाम शङ्कर हुआ जो इस लेख के नायक हैं। अब विचारशील पाठक स्वयं ही समझ गये होंगे कि ईश्वर के व्यापक नियम के अनुसार हरिशङ्करजी का मध्यम पुत्र वही जीव आकर हुआ होगा जो पूर्वजन्म के पुण्य और तप के प्रभाव से योगी होने की योग्यता रखता था। हम इस प्रसङ्ग में भगवद्गीता के वे वचन उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते, जो कृष्ण भगवान् ने अर्जुन की अप्राप्त-योग-संसिद्धि पुरुषों की गतिसम्बन्धिनी शङ्का के निवारणार्थ कहे थे—

प्राप्य पुण्यकृतान् लोकानुषित्त्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ १ ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ २ ॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्व्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ३ ॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४ ॥
प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ५ ॥*

(अ० ६, श्लोक ४१-४५)

* योग सिद्धि के प्राप्त होने के पहिले ही मरनेवाला स्वर्ग को प्राप्त कर और वहां बहुत वर्षों तक वास कर पवित्र अंतःकरण वाले धनी पुरुष के घर में जन्म लेता है, अथवा ज्ञानवान् योगियों के कुल में जन्म लेता है, क्योंकि ऐसा जन्म संसार में दुर्लभतर है। वहां वह पूर्व देह के बुद्धिसंयोग को प्राप्त करता है। पूर्वाभ्यास के प्रभाव से वह अकामतः विषयों से दूर हो जाता है। योग का जिज्ञासु भी वेदोक्त कर्म के फल से अधिक फल प्राप्त करके मुक्त होता है। प्रयत्न से पुरुषार्थ करता हुआ योगी पापमुक्त होकर अनेक जन्म से साधन करता हुआ श्रेष्ठ गति को पाता है। [इन वाक्यों में योग से तात्पर्य ज्ञान योग से है]

नव वर्ष की अवस्था में शंकरजी श्री विश्वेश्वर सरस्वती के सौंप दिये गये। कदाचित् इनके माता पिता कुछ समय तक और भी इनके लालन पालन का सुखलाभ करते, परन्तु उनके कनिष्ठ पुत्र का विवाह मध्यम पुत्र के अविवाहित रहते हुए रुका हुआ था। अतएव उक्त समर्पण में कुछ शीघ्रता की गई। कहते हैं कि माता के यह पुत्र-वियोग, असह्य होने के कारण, स्वीकार नहीं था। परन्तु पिता ने प्रतिज्ञा के ध्यान में रख उन पर कोप किया, और पुत्र के सन्यास के लिए देना अपना कर्तव्य समझा। १७ वर्ष की अवस्था तक शङ्कर जी गुरु की सेवा में रह कर विद्या और योग का अभ्यास करते रहे। तत्पश्चात् सन्यास धारण कर उन्होंने चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया।

शास्त्र में सन्यास दो प्रकार का कहा गया है। एक क्रम सन्यास, दूसरा अक्रम सन्यास। क्रम से ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ होकर सन्यासी होना क्रम सन्यास है। अन्यथा अक्रम सन्यास होता है, जिसका कारण तीव्र वैराग्य हुआ करता है।* स्वामी आत्मानन्दजी अक्रम सन्यास के उदाहरण स्वरूप हैं। काञ्चीमठ में उन्होंने सन्यास लिया था। सन्यास के पूर्व और सन्यास के पश्चात् सब मिला कर ११ वर्ष तक इन्होंने गुरुकुल में वास किया। तत्पश्चात् इन्होंने देशाटन प्रारम्भ किया। यह दक्षिण के तीर्थों के अतिरिक्त प्रायः और भी प्रसिद्ध तीर्थों में जा चुके हैं और इनकी वृहत् यात्रा की कथा यदि विस्तार से लिखी जाय तो अवश्य बहुत उपकारी और रोचक हो। परन्तु हम इस लेख के बहुत दीर्घ करना नहीं चाहते, इसलिए केवल थोड़ी सी घटनाओं की हम चर्चा करते हैं।

स्वामी जी के वन का निवास अधिक प्रिय है। जब कभी उनका निवास किसी बस्ती के समीप होता है, तब भी वे यथासम्भव एकान्त-वास ही की आकांक्षा रखते हैं और यदि दर्शक जिज्ञासु होते हैं, तो उनके सतसंग के भी ये स्वीकार करते हैं।

एकबार दक्षिण प्रान्त के किसी घोर वन में स्वामी जी ने कई सप्ताह तक अकेले ही निवास किया। उस स्थान पर आहार की कोई सामग्री नहीं थी। यहां तक कि कोई खाद्यफल का वृक्ष भी समीप नहीं था। बस्ती का तो कोसों तक नाम निशान ही न था। वहाँ दैवी प्रेरणा से, अथवा स्वाभाविक साधु सेवा की रुचि से, अथवा स्वामि जी के तप के प्रभाव से, (जो कुछ समझिये) एक वनचर बहुत दूर से पके जामुनों का एक दोना भेट कर जाया करता था। इस कथन से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तपस्वियों का नितान्त साहस, दूसरे ईश्वर का पोषण-प्रबन्ध।

एक समय, दूसरे वन में, जिस समय स्वामी जी समाधिस्थ थे, एक व्याघ्र ने उनके पैर के किञ्चित् घायल किया, परन्तु रुधिर की धारा न निकलने के कारण, कदाचित् उस शरीर के मृत समझ कर, वह बिना अधिक हानि किये चला गया। अथवा यह कहना चाहिए कि श्वापद भी तपस्वी के हिंसक नहीं होते। यहां यह शङ्का हो सकती है कि उसने घायल ही क्यों किया? इसका समाधान यह है—

भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यंते।

ब्रह्मसूत्र।

अर्थात् यद्यपि सञ्चित और क्रियमाण कर्मों का अपरोक्ष ज्ञान से नाश हो जाता है, तथापि प्रारब्ध कर्मों का भोग हो से नाश होता है। तब विदेह

---

* "ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेद् गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्" ॥

यह श्रुति क्रम सन्यास और अक्रम सन्यास की विधि में है और इसका अर्थ यों है—

अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्य की समाप्ति करके गृहस्थ होवे; तदुपरान्त वानप्रस्थ होवे; तदुपरान्त सन्यास ग्रहण करे। और जो कदाचित् इस अधिकारी पुरुष को पूर्व पुण्य कर्मों के प्रभाव से प्रथम ही तीव्र वैराग्य की प्राप्ति होवे, तो वह ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थाश्रम से ही सन्यासी हो जावे। निदान जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन वह सन्यास धारण करे।

मुक्ति प्राप्त होती है। एक समय स्वामीजी पञ्चवटी (नासिक) के समीप एक वृक्ष के नीचे समाधि लगाये हुए बैठे थे। प्लेग महकमे के किसी यूरोपियन डाकृर ने उनको मृतक समझ कर फूँके जाने की आज्ञा दी। परन्तु जब वहाँ के पण्डों ने इनके शरीर को देखा, तब उन्होंने समाधि का अनुमान कर साहब से प्रार्थना की कि इस शरीर की हम लोग रक्षा करेंगे। यदि यह मृतक है तो हम लोग ही इसका अग्नि-संस्कार करेंगे, क्योंकि यह हिन्दू साधु है। साहब ने इसे स्वीकार किया। तीसरे दिन समाधि खुली। उस समय पंडों को जो आनन्द हुआ वह केवल अनुमान करने योग्य है। नासिक में स्वामी जी कुछ काल तक स्थित रहे, जिससे वहाँ के सदाचरणशील गृहस्थों को उनके दर्शन और उपदेश का लाभ हुआ।

ये दक्षिण की घटनाएं हुईं। अब एक घटना उत्तर की सुनिये। प्रसिद्ध है कि वर्तमान श्री बदरीनारायण के क्षेत्र से प्राचीन बदरिकाश्रम लग भग ४० दिन का मार्ग है। वहीं नर-नारायण का तप हुआ था। और वहीं स्वामी शङ्कराचार्य्य का श्रीदुर्गादेवी से साक्षात्कार हुआ था। वह भूमि अत्यन्त पवित्र और पुण्य तीर्थ मानी जाती है। वहाँ तक पहुँचना तीर्थयात्रा की पराकाष्ठा समझी जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ उसी तपस्वी का पहुंचना सम्भव है जो हिमालय का शरीर गलानेवाली सर्दी को सह सके और बहुत दिन तक निराहार रहने का सामर्थ्य रखता हो। बदरीनारायण से एक मंज़िल चलने के उपरांत ही वायु, जल और स्थल इतने शीतल हैं कि वहाँ साधारण प्राणी का जीना प्रायः असम्भव है। यही कारण है कि न तो वहाँ कोई जीव जन्तु ही रहते हैं, और न कोई वृक्ष ही उगते हैं। एक आध जाति के वृक्ष जो वहाँ होते भी हैं, वे भी बर्फ़ से ढके रहते हैं। खाने को कुछ भी नहीं मिलता। यदि आहार है तो केवल पवन और पानी का। स्वामी आत्मानन्द ने उस दुर्गम मार्ग को भी पार किया और बदरिकाश्रम जाने का अपना मनोरथ सिद्ध कर लिया।

इस यात्रा में स्वामी जी को अत्यन्त क्लेश हुआ। परन्तु उन्होंने समस्त मार्गक्लेश को सहन करने का साहस करके ही उसका अनुष्ठान किया था। हमको उसके सम्बन्ध में एक वृत्तान्त, जो स्वयं स्वामी जी से ज्ञात हुआ है, लिखने योग्य है। एक बार स्वामी जी मार्ग भूल गये और ९ दिन तक अत्यन्त विषम भूमि और दुर्घट नाले झझाने से उनका शरीर शिथिल हो गया। यहाँ तक कि उनको अपने जीवित रहने में भी सन्देह होने लगा। जब वह अत्यन्त श्रमित होने के कारण विवश हो रहे थे, एक महात्मा अकस्मात् उनके पास आया और उनकी सेवा में तत्पर हुआ। प्रथम तो उसने चाहा कि आग तैयार करके स्वामी जी को तपवावे। परन्तु यह बात स्वामीजी ने स्वीकार नहीं की, क्योंकि अग्नि का छूना वा तापना सन्यासाश्रम के विरुद्ध है। फिर उस महात्मा ने तीन फल भून कर स्वामीजी के आगे रक्खे, जिनमें से इन्होंने दो ग्रहण कर तीसरा उनको वापिस दिया। इस स्वल्प भोजन के उपरान्त उस महात्मा ने इनके चरण दाबना आरम्भ किया। स्वामीजी को निद्रा आगई। जब वे जगे, तब उन्होंने उस महात्मा को न पाया। स्वामीजी ने अपनी राहली, परन्तु फिर तीन दिन तक इनको अधिक क्लेश रहा और इनके चित्त में उसी महात्मा के पुनर्दर्शन की उत्कण्ठा हुई। समाधि लगा कर ये एक जगह स्थित हो गये। समाधि खुलने पर उस महात्मा को स्वामीजी पाकर बहुत हर्षित हुए। महात्मा ने कहा "आप बहुत हठी हैं"। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि, "हम तो हठयोगी हैं ही"। महात्मा मुसकराया और मार्ग बता कर इनसे बिदा हो गया। महात्मा इनसे संस्कृत में बोलता था।

स्वामीजी की दिनचर्य्या हमने इस प्रकार देखी। ३ बजे उठ कर शौच और स्नान के अनन्तर

समाधि में बैठना। ११ या १२ बजे उठना। अत्यन्त स्वल्प भोजन करना—जैसे बिल्वपत्र या कोई सात्वकी फल*। और यदि प्रस्तुत हो तो किञ्चित् दूध या मठा पीना। तदुपरान्त वेदान्त-विचार करना। और यदि कोई जिज्ञासु दर्शक उपस्थित हों तो उनसे वार्तालाप करना। अथवा प्रसङ्गवशात् और अधिकार भेद से कर्म और उपासनासम्बन्धी उपदेश करना। सायङ्काल होते ही पुनः स्नान करके एक पहर की समाधि लेना। तदुपरान्त जिज्ञासुओं की उपस्थिति और रुचि के अनुसार दो, तीन या चार घण्टे तक सत्सङ्ग करना। फिर शयन करना।

स्वामीजी को हमने इस लेख के आदि ही में अष्टाङ्गयोगी लिखा है। योग के अष्टाङ्ग† ये हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

* आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥१॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ २ ॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्य्युषितञ्च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ३ ॥
भगवद्गीता।

आयु, उत्साह, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता को बढ़ानेवाले, रससंयुक्त और चिकने, देह में साररूप होकर चिरकाल तक ठहरनेवाले, और दृष्टि को रुचनेवाले, आहार सात्वकी जनों को प्रिय होते हैं ॥ १ ॥

बहुत कड़ुए, खट्टे, नमकीन, गर्म, तीखे, रूखे, जलन पैदा करनेवाले आहार राजसी लोगों को रुचते हैं और दुःख, शोक, रोग के देनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

एक पहर से अधिक के बने हुए, रस से हीन, दुर्गंध-युक्त, बासी, जूठे और अभक्ष्य (मांस, कलंज, मद्यादि) आहार तामसीजनों को प्रिय होते हैं ॥ ३ ॥

† इन आठ अङ्गों की व्याख्या राजयोग और हठयोग की प्रक्रिया के अनुसार दो तरह की है। इस प्रसङ्ग में हठ-योग की प्रक्रिया से अभिप्राय है।

व्याख्या के लिये पातञ्जलयोग-दर्शन, पाद २, सूत्र २९; अथवा भगवद्गीता पर स्वामी चिद्घनानन्द-कृत टीका अ० ४, श्लोक २३-३३ तक देखो।

ध्यान और समाधि। ये आठों अङ्ग स्वामी जी ने सम्यक् प्रकार से सिद्ध किये हैं। समाधि के लगाने और खोलने में इनको किञ्चित् भी आयास नहीं होता; न किसी सहायक की आवश्यकता होती है। कभी कभी तीन दिन तक समाधि से उत्थान नहीं होता। अन्यत्र जो स्वामीजी का चित्र दिया गया है वह त्राटकमुद्रा और योनि-पद्मासन का है। हमने स्वामीजी को प्रत्यक्ष समाधिस्थ देखा है—एक बार नहीं, अनेक बार।

स्वामीजी को समाधि-सिद्धि हुए ५ वर्ष हो चुके हैं। ऐसी शीघ्रता से योग की अन्तिमसिद्धि के प्राप्त होने का कारण तप के अतिरिक्त अखण्ड ब्रह्मचर्य ही* कहा जा सकता है।

अष्टाङ्ग योग सिद्ध होने पर भी स्वामीजी इस क्रिया को अन्तःकरण की शोधक मात्र ही मानते हैं। मोक्ष तो वे वेदान्तविचार द्वारा ब्रह्मज्ञान ही से मानते हैं। इसी कारण वे हठयोग की अपेक्षा राजयोग (ब्रह्मज्ञान) की महिमा अधिक वर्णन करते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण भगवान ने भी—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

इत्यादि श्लोकों के द्वारा योगचर्चा करते हुए उस प्रसङ्ग को इस श्लोक पर समाप्त किया है—

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप !
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ! ज्ञाने परिसमाप्यते ॥

सम्पूर्ण शुभकर्मों का नाम यज्ञ है। श्रीकृष्णभगवान ने अर्जुन के प्रति गीता में वेदोक्त सम्पूर्ण शुभकर्मों

* ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः। योगसूत्र २, ३८।
इस पर व्यास-भाष्य इस भांति है—

यस्य लाभादप्रतिमान् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति।

अर्थात् जिसके लाभ से सिद्ध अप्रतिमान गुणों को उत्कर्षित करता है और शिक्षा करने योग्य जिज्ञासुओं को ज्ञान देने में समर्थ होता है।

[वीर्य्य के निरोध से और ब्रह्मचर्य्य के प्रभाव से शरीर, इंद्रिय, और मन का उत्साह उन्नत हो जाता है। (भोजवृत्ति)]

सरस्वती

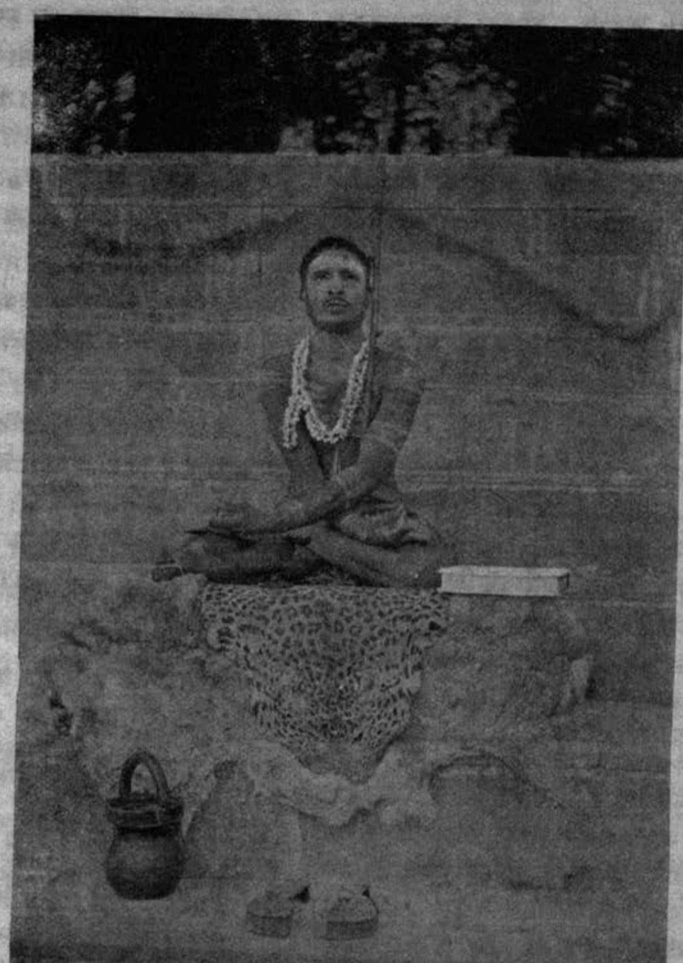

योगिवर आत्मानन्द स्वयंप्रकाश सरस्वती ।

National Library,
Calcutta-27.

के बारह प्रकारों में विभक्त किया है, ग्रैार ग्रन्त में उनकी यह ऊपर दी हुई उक्ति है। इसका ग्रर्थ यह है—"हे ग्रर्जुन! द्रव्यमय ग्रादि (कर्म्मोपासना सम्बन्धी) पीछे कहे हुए सम्पूर्ण यज्ञों से ज्ञानयज्ञ (ब्रह्मज्ञान) ग्रत्यन्त श्रेष्ठ है। क्योंकि, हे पार्थ, सब निरवशेष कर्म ज्ञान में ही समाप्त होते हैं"। भावार्थ यह है कि पिछले यज्ञों में कर्म्मोपासना कही है, जिसके, इस जन्म या पूर्व जन्मों में, ग्रनुष्ठान करने से पुरुष के वैराग्य ग्रैार ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

ग्रब इस लेख के हम इस ग्राशा के साथ समाप्त करते हैं कि इसका पढ़ना सरस्वती के पाठकों के लाभ ग्रैार विनोद का हेतु होगा।

"यतो जातानि भूतानि जीवन्ति यदनुग्रहात्।
यस्मिन्नेव लये यांति तस्मै चिद्ब्रह्मणे नमः॥"

आत्मबोध।

देवीप्रसाद (पूर्ण)।

शरत्-स्वागत।

[१]

ग्राई ऋतु-प्रवर सुन्दर मोदकारी
शोभा-भरी शरद को ग्रति मात्र प्यारी।
ग्राकाश शुक्लतर-वारिद-वृन्द-पूर्ण
ग्रानन्द ग्राज सबके मन में बढ़ाता॥

[२]

मन्दस्मितानन-मनोहर-फूलवाली
ग्रत्यन्त-रम्य-नव-पल्लव-गात-युक्त।
बाला समान कुच-कुड्मल के छिपाये
देती ग्रहो! कुमुदिनी निशि में प्रमोद॥

[३]

ग्रङ्गूर, सेब, ग्रमरूद, नवीन नींबू,
मेवा ग्रनार, कदलीफल ग्रादिकों का।
बाज़ार है गरम; नित्य नई ग्रनेक
चीज़ें चलीं ग्रति रसाल गली गली हैं॥

[४]

ग्रम्भोज, काश कमनीय, गुलाब ग्रादि
फूले हुए सकल शोभित हो रहे हैं।
माना नई शरद-सुन्दर-कामिनी को
पाके, प्रमोद मन का दिखला रहे हैं॥

[५]

नक्षत्र-तारक-मयी रमणीय प्यारी
व्योमस्थली रुचिर-रूपवती निशा में।
शोभायमान ग्रति ही, इस काल, देखो,
माना खिली प्रकृति की वर-वाटिका है॥

[६]

वापी-तड़ाग-नदियां जितनी जहां थीं
सानन्द त्याग निज कल्मष-राग-रोष।
मोती-समान ग्रति-निर्म्मल-नीर-पूर्ण
संशुद्ध-शान्त-रस-मूर्ति बनी विलोको॥

[७]

नवल-मुकुलधारी चित्तहारी द्रुमों के
मृदु दल फहराते हैं लता-मंडपों पै।
रसिक जन जहां हैं पूर्ण ग्रानन्द पाते
रुचिर छवि वहां की वर्णनातीत मित्र!

[८]

प्यारी-प्यारी-कुसुम-कलिका-लीन है भृङ्गराजी;
पी पी फूलों की मधु-सुरा पान से मत्त भारी।
गाती गाती रवमय नये गीत मीठे रसीले
देती पैदा कर रसिक के चित्त में भूरि भाव॥

सत्यशरण रतूड़ी।

---

* क्रोधाष्टक।

[१]

होती तुरन्त उनकी बलहीन काया;
वे जानते न कुछ भी ग्रपना पराया।
होते ग्रचेत, वर-बुद्धि-विहीन, पापी,
रे क्रोध! जो जन तुझे करते कदापि॥

* जून, सन् १९०५, की "सरस्वती" में प्रकाशित "क्रोध" शीर्षक लेख को लक्ष्य करके यह कविता लिखी गई है। लेखक।

[२]

अच्छा, अनिष्ट, परिणाम न जानने तू
देता, न बात हित की कुछ मानने तू ।
तू छीनता सकल ज्ञान बुरे भलेका ;
तूही विनाश करता स्वर है गलेका ॥

[३]

अत्यन्त ही श्रवण-शक्ति-विहीन कर्ण
होते, तथा नयन-आनन रक्त-वर्ण ।
सु-ज्ञान, ध्यान, सब शीघ्र पलायमान
होते प्रवेश तव देख विकारवान ॥

[४]

अत्युग्र कण्ठ-रव कर्कश तू कराता,
सारा शरीर कदलीदलवत् कँपाता ।
तूही कुवाच्य नर के मुख से कहाता,
तूही अनेक विकृताकृति है बनाता ॥

[५]

हैं क्रोध में मनुज जो अनुरक्त होते,
सारा विवेक अपना अति शीघ्र खोते ।
जो त्यागते न तुझको यह जान के भी,
होते कभी अहह ! क्या नर श्रेष्ठ वे भी ?

[६]

गम्भीरता, सुखद शान्ति, विवेक, भक्ति,
आनन्द, नीति, क्षमता, सुविचार-शक्ति ।
हा हा ! तभी तक मनुष्य-शरीर बीच,
यावत् प्रवेश नहिँ है तव क्रोध ! नीच ॥

[७]

रे क्रोध ! जो प्रबल-वह्नि बिना जलावै,
सारा शरीर-वन भस्म हुआ बनावै ।
ऐसा न और तुझसा जग बीच पाया,
हारे विचार हम किन्तु न चित्त आया ॥

[८]

देता तुझे जगह जो उर बीच क्रोध !
होता वही तव कुसङ्गति से अबोध ।
तूही बता फिर तुझे नर श्रेष्ठ कैसे
त्यागैं न भृङ्ग रसहीन प्रसून जैसे ?

मैथिलीशरण गुप्त ।

हे भारत !

हे भारत ! विरचो विधि तोंको
जग में सुन्दर रतन महान !
वा कहिये यों तोहिँ बनायो
फल इक मीठो सुधा-समान ॥१॥

देस देस के नृप विलोकि तोहिँ,
मुँह के बल दौरत तव ओर ।
तनिक न तन की सुधि वे राखैं
कष्ट सहैं वे यद्यपि घोर ॥ २ ॥

लूट पाट करि करि मनमानी
लाय लाय दल लाख करोर ।
तेरे मस्तक पै घहरावैं
निर्दयता सोँ नाते जोर ॥ ३ ॥

ग्रीस देस से दौरत आयो
विजयी वीर सिकन्दर साह ।
पाञ्चाल में पोरस नृप ने
तासोँ युद्ध कियो सोत्साह ॥ ४ ॥

पार पञ्चनद करि, अपार दल
लये, बढ़ो वह आगे धाय ।
पहुँचो सुर-सरिता के तट पर
जहाँ धान्य धन सदा सुहाय ॥ ५ ॥

इहां महान वीर बलसाली
महानन्द नृप मगध-नरेस ।
पालत रहो विपुल सेना सह
अपनो अति उपजाऊ देस ॥ ६ ॥

सुनी सिकन्दर ने जब वाके
बल की बातैं तब वह वीर ।
लौट चलो हिय में शङ्कित ह्वै
बाबुल पहुँचत तज्यो सरीर ॥ ७ ॥

अति दुर्मद उत्तर पश्चिम के
मुसल्मान योधा रनधीर ।
चले तोहिँ हत भारत ! लूटन
लीन्हे साथ हज़ारन वीर ॥ ८ ॥

जैसे बाज लवा पर झपटत
　　वैसे सिंधु नदी के तीर।
गिरे वज्र सम हिन्दु-वृन्द पै
　　उपजाई अति दुस्तर पीर ॥ ९ ॥

रहा एक महमूद ग़ज़नवी
　　अति निष्ठुर धर्म्मान्ध विशेष।
आरजगन के मन्दिर जेते
　　ब्रह्मा, विष्णु, गनेस, महेस ॥ १० ॥

तिनको तोरि फोरि अच्छी विधि
　　अजसरासि सिर ऊपर लीन!
हे भारत सोऊ तुमने सब
　　सहो, हुए अतिसय श्रीहीन ॥ ११ ॥

ग़ोर देस तें ग़ोरी धाये
　　दल बल लै अपने आधीन।
सीधे सादे आरज-राजन
　　सो नित नूतन विग्रह कीन ॥ १२ ॥

पृथ्वीराज महीपति, भारत!
　　तेरो मस्तक-मुकुट सरूप।
छल सोँ ताहि पराजित करिके
　　अपनायो यह भूमि अनूप ॥ १३ ॥

तब सोँ घाव हुए तेरे तन
　　सत्य कहहिँ हम हे भारत!
आये अब अँगरेज़ वैद्य सम
　　जिनमें तू तन मन से रत ॥ १४ ॥

श्रीरामरणविजयसिंह।

पत्नीव्रत।

बाबू गोपालदास की पत्नी श्यामा शय्या पर पड़ी कण्ठस्थ-प्राण हो रही है। डाक्टर, हकीम, वैद्य आदि सब ने साफ़ जवाब दे दिया है। अब केवल दो तीन घण्टे की वह और मेहमान है। कुटुम्ब और परिजन के लोग उस आसन्न-मृत्यु-शय्या को चारों ओर से घेरे हुए रो रहे हैं। मुमूर्षु क्षण क्षण में नेत्र खोल कर सबको ओर देखती और दृष्टि फेर लेती है। गोपालदास के दूरदर्शी पिता उस कण्ठस्थप्राणा की ऐसी आकुल अवस्था देख कर उसके मनोभिलाष को समझ गये। उसी समय पुत्र गोपालदास को बुला कर उन्होंने कहा—"गोपाल, हम लोग बाहर जाते हैं, तुम थोड़ी देर यहां बैठो"। इतना कह कर सब लोग बाहर चले गये।

पतिपरायणा कण्ठस्थप्राणा श्यामा पति की ओर एकटक देखने लगी। कुछ देर बाद गोपालदास ने पूछा—"क्या तुम कुछ मुझसे कहना चाहती हो?" तब श्यामा ने धीमे स्वर से कहा—"तुम विवाह कर लेना"। गोपाल के गालों पर आँसुओं की धारा बह रही थी। उन्होंने कहा—"नहीं, अब हम विवाह न करेंगे"। उनकी स्त्री बोली "नहीं, तुम्हें कष्ट होगा; तुम विवाह अवश्य कर लेना"। श्यामा के सूखे होठों में बेदाने का दो चार बूँद रस डालकर गोपालदास कहने लगे, "तुम और कोई अनुरोध करो; मैं उसे प्राण देकर भी पूरा करने को प्रस्तुत हूं; किन्तु इस बात की प्रार्थना कदापि मत करो"। मृदु मुसक्यान के साथ श्यामा फिर धीमे स्वर से कहने लगी—"क्यों तुम विवाह नहीं करोगे? परकाल में यदि मुझे क्रोध अथवा ईर्षा करने की शक्ति होगी तो मैं कहे जाती हूं कि मैं ज़रा भी असन्तुष्ट न हूंगी। तुम ख़ुशी के साथ विवाह करना"। गोपालदास स्नेहपुलकित हाथों से श्यामा का हाथ थाम के कहने लगे—"तुम बारम्बार क्यों ऐसा अनुरोध करती हो? मैं विवाह कदापि नहीं कर सकता"। मुमूर्षु के होठों पर मन्द मुसक्यान की छटा देख पड़ी। टिमटिमाता हुआ दीप ज़रा देर के लिए कुछ प्रज्वलित होकर फिर बुझ गया। वह हँसी अविश्वासजनित व्यंग्य की थी, अथवा सन्तोष की, यह ठीक समझ में न आया।

बाबू गोपालदास बीस वर्ष पहले के एक उच्च शिक्षा प्राप्त बी० ए० उपाधिधारी विचारशील युवक थे। तब तक ग्रेजुएट लोगों के विषय में आजकल की सी दुर्दशा का सूत्रपात नहीं हुआ था। श्यामा की श्राद्ध-क्रिया समाप्त होने के पहले ही उनके विवाह की चर्चा लेकर बहुतेरे लोग आने लगे। गोपालदास सबको मीठी मीठी बातों से सन्तुष्ट करके लैाटाते रहे। श्राद्ध हो जाने के बाद कन्याभारग्रस्त पिताओं की एक मण्डली ने गोपालदास के पिता को जा घेरा। गोपालदास के पिता ने कहा—"गोपाल के विवाह-सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लड़का स्वयं समझदार और वयोवृद्ध है। अतएव उसका जो मत हो वही आप लोग मेरा भी समझिए। यदि आप लोग उसे राज़ी कर सकें तो अति उत्तम है"। गाँव के सब बड़े बूढ़े गोपाल के पिता को इस भांति पुत्र का आज्ञाकारी देख उनकी निन्दा करते हुए गोपाल के पास पहुँचे। उनसे उन्होंने तर्क करना चाहा। उनका प्रश्न हुआ—"तुम विवाह क्यों नहीं करते?" गोपालदास ने हँस कर उत्तर दिया—"इस 'क्यों' का तो कोई उत्तर नहीं। हम लोगों के जितने काम होते हैं, सबका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। इस कारणशून्य कार्य्यों के साथ हमारे इस एक की भी गणना कीजिए"। इन वाक्यों को सुन कर आगन्तुक वृद्धजन क्रोध से जल भुन कर गोपाल और उनके पिता को भला बुरा कहने लगे। जिस समय पिता की इच्छा के अनुसार कार्य्य करना ही शास्त्र समझा जाता था, उस समय गोपालदास के पिता का पुत्र को इस भाँति बढ़ावा देना और पुत्र के द्वारा इतने बड़े बूढ़ों का अपमान होना, ग्रामवासियों को अत्यन्त असह्य बोध हुआ। वे लोग गोपाल के पिता से गर्ज कर कहने लगे—"अँगरेज़ी पढ़ा कर आपने अपने पुत्र को अति सुशील और अति कुलपावन बनाया है। बस अब देश और समाज नष्ट भ्रष्ट हुए समझिए। मोतीचन्द के पुत्र रामकृष्ण ने अँगरेज़ी पढ़ कर भी अपनी कुल-मर्य्यादा को नहीं छोड़ा है। वह अपने कुलीन होने का बहुत बड़ा अभिमान रखता है; परन्तु गोपाल के तुल्य अहङ्कारी लड़का हम लोगों ने और कोई नहीं देखा। उसने बड़े बूढ़ों की मर्य्यादा और प्रतिष्ठा का कुछ भी ध्यान न देकर हम लोगों की बातों को एकदम काट दिया"—इत्यादि। इन बातों को सुनकर गोपाल के पिता ने अति प्रसन्न होकर कहा—"आज आप लोगों ने मुझे असीम आनन्द प्रदान किया। आज मैंने जाना कि मेरे पुत्र को यथार्थ शिक्षालाभ हुआ। जिसका एक पैर स्वर्ग और दूसरा मर्त्यलोक में था, उसी, 'स्त्री' के नाम से पुकारी जानेवाली, पूजनीया और माननीया देवी के सामने मेरे पुत्र ने जो प्रतिज्ञा की थी उसे अपने जीते जी पालन करने का जो उसने यत्न किया है उससे मैं आज बहुत ही सुखी हुआ हूं। अन्त तक यह प्रतिज्ञा अभङ्ग रहेगी या नहीं, यह मैं नहीं जानता; परन्तु उसके पालन करने के यत्न ही ने मुझे यथेष्ट आनन्दित किया है। आप लोग ज़रा देर बैठिये। इस शुभ-सम्वाद-दान के अनन्तर बिना मीठा मुँह किये आप जाने नहीं पावेंगे"। वृद्ध लोग आश्चर्य-भरे नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखने लगे। गोपाल के मित्र हलवाई की दूकान की ओर दौड़े।

* * * * *

दस वर्ष बीतने के बाद की बात है। गोपाल मुमूर्षु पिता की शय्या के पास बैठे हैं। वृद्ध ने गोपाल के सिर पर हाथ रख कर कहा—"हमारा अन्तिम आशीर्वाद और मङ्गलकामना तुम्हारी रक्षा करे। मरने के समय मुझे तुमसे दो चार बातें कहनी हैं। धर्मशील और ईश्वरपरायण होना। हमारे देश में पितृभक्ति के बहुत दृष्टान्त वर्त्तमान हैं। तुम भी सुशील और पितृभक्त हो। मुझे अपनी किसी अपूर्ण इच्छा की पूर्ति के लिए तुमसे कहने की कुछ आवश्यकता नहीं। तुम सभी जानते हो, और जहां तक बन पड़ेगा

बिना कहे ही सब करोगे। मुझे केवल एक बात कहना है। तुमने स्वर्गगामिनी श्यामा के सामने जो दृढ़ प्रतिज्ञा की है उसे अन्तिम काल तक पालना। तुम्हारे शुद्ध प्रेम को मेरी आज्ञा बल प्रदान करै। हमारे देश में 'पतिव्रता' नाम का शब्द है, परन्तु 'पत्नीव्रत' शब्द नहीं है। तुम उस अपने उज्वल दृष्टान्त से 'पत्नीव्रत'-धर्म सार्थक करके इस शब्द की सृष्टि करो! और अधिक मैं क्या कहूं। तुम्हारा मङ्गल हो"।

वृद्ध गोपालदास कठोरभाव से ब्रह्मचर्य पालन करते हुए मृत्यु की राह देख रहे हैं।*

भट्टाचार्य्य।

पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण।

इस देश के लोगों का पुनर्जन्म में पूरा विश्वास है। विद्वान्, मूर्ख, युवा, जरठ, स्त्रियां और बच्चे तक समझते हैं, और विश्वास करते हैं, कि इस जन्म के पहले भी वे किसी न किसी योनि में ज़रूर थे और इस शरीर के छोड़ने पर भी वे कहीं न कहीं ज़रूर उत्पन्न होंगे। स्पिरिचुएलिज़म, अर्थात् आत्मविद्या, के बल से त्यक्त-शरीर आत्माओं को—यदि उनका पुनर्जन्म न हुआ हो—हम लोग मनुष्य-चक्र की सहायता से बुला सकते हैं और उनसे वार्तालाप कर सकते हैं। मुक्त मनुष्य चक्रगत मनुष्यों में से सबसे अधिक धार्म्मिक और सतोगुणी के शरीर में घुसकर अच्छी तरह बात चीत करते हैं। जिस समय हम झांसी में थे, हमारे एक मित्र इस प्रकार की चक्र-क्रिया अकसर किया करते थे। ग्वालियर के एक प्राचीन मृत-कवि (उनका नाम हम भूलते हैं) हम लोगों के चक्र से ख़ूब परिचित हो गये थे। चक्रसिद्धि होते ही वे आजाते थे। उनको इत्र सूंघने और गाने से बड़ा शौक़ था। उन्होंने एक युवक को चुन लिया था। उसीके सिर वे आते थे और इत्र और फूल सूंघ कर गाना सुनते थे। वे ख़ुद भी अच्छी अच्छी ग़ज़लें गाते थे। उनका सबसे प्यारा फ़ारसी का यह पद्य था—

> चु कुफ़्र अज़ काबा बरख़ेज़द,
> कुजा मानद मुसल्मानी।
> चरा कारे कुनद आक़िल,
> के बाज़ आयद पशेमानी॥

उनको हम लोग गीतगोविन्द सुनाया करते थे। "पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तं। तदधर-मधुर-मधूनि पिबन्तम्" यह गीत आपको बहुत पसन्द था। इसको आप बारबार दोहराते थे। हमने पता लगाया तो मालूम हुआ कि ये कविवर ग्वालियर ही के थे और इनको मरे हुए कोई चालीस पचास वर्ष हुए थे।

हमारे चक्र में बांदा का एक लड़का बड़ा उत्पात मचाता था। वह मुसल्मान था। वह बीच बीच में, बिना प्रेरणा के, आ जाता था। दो एक दफ़ा जो उसने शरीरसञ्चार किया तो वह बेतरह रोया और चिल्लाया। उसका पता लिखकर हमने बाँदा के स्टेशनमास्टर से उसका हाल दरियाफ़्त किया तो मालूम हुआ कि वह पाँच वर्ष पहले हैज़े से मर गया था। उस समय उसका विवाह होनेवाला था; उसकी उम्र कोई १८ वर्ष की थी।

एक दिन के चक्र में एक लार्ड आये। उस दिन पण्डित मुरलीधर मिश्र, स्कूलों के डेप्युटी इन्सपेक्टर, भी मौजूद थे। अब आप इटावे में असिस्टण्ट इन्सपेक्टर हैं। लाट साहब ने अपना नाम और पूरा पता दिया और कहा कि कलकत्ते में उस समय कोई जलसा है, उसीमें शामिल होने के लिए वे जा रहे हैं। उन्होंने ऐसी अच्छी अँगरेज़ी में बात चीत की कि हम लोग दङ्ग

* वङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध "प्रवासी" नामक मासिकपत्र में प्रकाशित बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय के एक लेख का अनुवाद। अनुवादक।

हो गये। जिसके सिर वे आये थे वह बेचारा मुश्किल से दो चार टूटे फूटे वाक्य अँगरेज़ी में कह सकता था।

इस प्रकार की मुक्त आत्माओं से यदि शुद्ध भाव से पूछा जाय तो बहुत सी अच्छी अच्छी बातें मालूम हो सकती हैं। इनसे हमने कई एक मृत मनुष्यों के विषय में प्रश्न किया। उनमें से कई एक हमारे कुटुम्बी भी थे। मालूम हुआ कि कई का तो पुनर्जन्म हो गया, पर कई अभी मुक्त अवस्था में हैं। उनमें से, हमारी प्रार्थना पर, उन्होंने एक आध मुक्त आत्मा से हमारा परिचय भी कराया। एक दिन हमने ग्वालियर के कवि जी से कहा कि आप कालिदास या भवभूति को, यदि वे मुक्त हों, तो बुलाइए। इस पर कवि जी बेतरह अट्टहास करके हँसे। कोई पाँच मिनट तक आप हँसते रहे। आपने कहा कि भवभूति का हाल यहां किसीको नहीं मालूम। हां, कालिदास को लोग जानते हैं। पर वे कहाँ हैं, किस दशा में हैं, पुनर्जन्म को प्राप्त हो गये हैं, या कहीं किसी अन्य लोक में हैं—इसका पता उनको मालूम नहीं। आपने दिल्लगी में पूछा कि शङ्कराचार्य्य या श्रीकृष्ण से भी बात चीत करने को हम लोगों का जी चाहता है या नहीं?

भारतवासियों को पुनर्जन्म पर विश्वास करने के लिए प्रमाणों की ज़रूरत नहीं है। पर विलायती पण्डितों को पुनर्जन्म पर कम विश्वास है। उनको सब बातों में प्रमाण चाहिए। ख़ुशी की बात है, उनके लिए, पुनर्जन्म के प्रमाणों का भी उपक्रम हो रहा है। कर्नल डिरोचाज़ एक फ़रासीसी पण्डित हैं। आपने एक विलायती मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें आप कहते हैं कि मैं बहुत दिन से इस बात की परीक्षा कर रहा हूं कि मनुष्य अपने पहले जन्मों की बातें याद कर सकता है या नहीं। जाँच का फल अच्छा हुआ है। प्राणपरिवर्तन (मेसमेरिज़म) सम्बन्धी पाश देकर मनुष्य को सुला देने से उसे अक्सर अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हो आता है। पहले, विद्यमान जन्म के पिछले जन्म का स्मरण होता है; फिर उसके पहले का; फिर उसके पहले का। इसी तरह यह लगाव दूर तक चला जाता है। उलटे पाश देने पर जब मनुष्य अपनी स्वाभाविक दशा में आ जाता है, तब भी उसे अक्सर पूर्वजन्म-सम्बन्धिनी स्मृति नहीं भूलती। पर इस दशा में उसे स्मरण करने के लायक़ सबसे दूर के जन्म की पहले याद आती है; फिर धीरे धीरे उसे वर्त्तमान जन्म के पासवाले जन्मों की।

बनारसवासिनी मेम साहब एनी ब्यसण्ट की सूचना के अनुसार, दिसम्बर १९०४ में, कर्नल डिरोचाज़ ने एक फ़रासीसी यञ्जिनियर की लड़की पर प्राणपरिवर्तन विद्या का प्रयोग किया। लड़की अपने बाप के साथ सीरिया प्रान्त में रही थी। वहाँ उसका बाप यञ्जिनियर था। वहां, ९ वर्ष की उम्र तक, उसने अरबी लिखना पढ़ना सीखा था। बाप के मरने पर वह फ्रांस आई। प्रयोग के लिए कर्नल साहब ने उसीको चुना। पाश देते देते जब वह सो गई तब उसने अपनी दाहनी तरफ़ पहले नीले, फिर लाल रङ्ग की एक छाया को देखा। कुछ देर में उसका सूक्ष्म शरीर उसके पाँचभौतिक शरीर से बिलकुल ही अलग हो गया। कोई एक गज़ के फ़ासले पर, बांई तरफ़, उस लड़की ने अपने सूक्ष्म शरीर को, लाल और नीले रङ्ग में, देखा। वह शरीर उसके पञ्चभूतात्मक शरीर से एक आभासमयी रस्सी से बँधा सा था। जब कर्नल ने उलटी पाशें देकर उसे जगाना शुरू किया, तब उसके सूक्ष्म शरीर के पहले के से दो रूप हो गये। एक नीला, दूसरा लाल। और, धीरे धीरे वे उसके भूतात्मक शरीर में प्रविष्ट हो गये।

इस लड़की का नाम है मेरी मेव। पूछने पर उसने बतलाया कि मेरी आत्मा सफ़ेद अग्निशिखा

के समान है। उसका आकार प्रकाशमयी उँगली के बराबर है। उसे वह अपने भूतात्मक शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच में देखती है।

कर्नल साहब, प्रयुक्त दशा में, जब मेव से कहते हैं कि तुम अपनी वर्तमान उम्र से कम उम्र की हो जाओ, तब वह वैसाही करती है। उसकी उम्र १८ वर्ष की है। आज्ञा पाते ही वह १६, १४, १२ और १० वर्ष की हो जाती है। वह अपने शरीर को उसी दशा में देखती है जिस दशा में वह पूर्वोक्त उम्र में था। १० वर्ष की होने पर जब उससे पूछा जाता है कि तुम कहां हो, तब वह कहती है—"मारसेलिस में"। यह उत्तर ठीक है। वह इस उम्र में वहीं थी। इसी तरह वह दो वर्ष की उम्र तक का हाल बतलाती है। पर एक वर्ष की होने पर वह बोल नहीं सकती। इस जन्म के पहले की बातें धीरे धीरे उसे याद आती हैं। वह कहती है कि किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे पुनर्जन्म दिया। मेरे सूक्ष्म शरीर ने मेरे भौतिक शरीर के पैदा होने के कुछ ही पहले उसमें प्रवेश किया। पहले वह मेरी मा के आस पास था।

मेव कहती है, मेरा नाम इसके पिछले जन्म में लीना था। मैं ग्रेट ब्रिटन में एक मछुवे की लड़की थी। २० वर्ष की उम्र में मेरी शादी हुई। मेरे एक सन्तति हुई। दो वर्ष की उम्र में वह मर गई। मेरे पति का रोज़गार भी मछली मारने का था। उसका मछलीमार जहाज़ एक दफ़ा तबाह होगया। मेरे पति की मृत्यु उसीसे हुई। मुझे असह्य दुःख हुआ। मैं भी समुद्र में डूब कर मर गई। मछलियों ने मेरे शरीर को खा लिया। मुझे उस समय कुछ नहीं मालूम हुआ। मैं हवा में मिल गई। मैंने वहां प्रकाशमयी आत्माओं को देखा। पर उनसे बोलने की मुझे अनुमति नहीं मिली। इस दशा में मुझे कोई तकलीफ़ नहीं हुई। न मैं खुशही थी, न नाखुश। मैंने अपने पति और सन्तति को बहुत ढूंढा, पर मुझे उनमें से एक भी नहीं मिला।

तब मेव से कहा गया कि तुम लीना के पहले जन्म में प्रवेश करो और उसका भी वृत्तान्त बतलाओ। इस पर उसने कहा मैं 'अन्धकार" में हूं। मुझे तकलीफ़ है। पर वह तकलीफ़ कैसी है, मैं नहीं बयान कर सकती। मुझे याद पड़ता है, मैं लुई, अठारवें, के समय में हूं। मैं आदमी हूं। मेरा नाम मावील है। मैं पेरिस के एक दफ़्तर में कर्म्मचारी हूं। लोग गलियों में लड़ रहे हैं और खून ख़राबा कर रहे हैं। मैं भी उनमें शामिल हूं। मैं ने भी कई आदमियों को मार डाला। मुझे मारने में मज़ा आता है। मैं बुरा आदमी हूं। ५० वर्ष की उम्र में मैं बीमार पड़ा। मैंने नौकरी छोड़ दी। इसके कुछ ही दिनों बाद मैं मर गया। मुझे अपने मृतक संस्कार तक की बातें स्मरण आ रही हैं।

इसके बाद कर्नल साहब ने मेव को उसके और दो पिछले जन्मों का स्मरण करने के लिए कहा। एक का तो उसे स्मरण अच्छी तरह आया। उस जन्म में वह स्त्री थी उसकी शादी एक अमीर आदमी से हुई थी। इस जन्म की भी बहुत सी बातें उसने बतलाईं। ४५ वर्ष की उम्र में क्षयरोग से उसकी इस जन्म में मृत्यु हुई। मृत्यु के समय का दृश्य भी मेव के चेहरे पर देख पड़ा। इसके बाद वह "अन्धकार" में फिर लुप्त हो गई। इसके पहले जन्म में मेव लड़कपनही में मर गई। इसके पीछे की बातें स्मरण करने में मेव को बहुत प्रयास पड़ने लगा। इससे कर्नल साहब ने उसे और पीछे नहीं जाने दिया।

कर्नल साहब कहते हैं कि यदि मेव के पूर्व जन्मधारी स्त्री पुरुषों का पता किसी दूसरे द्वारा से लग जाय कि वे सचमुचही थे, तो आत्मा का अविनाशित्व और पुनर्जन्म सप्रमाण सिद्ध हो जाय। अर्थात् आपका सन्देह अभी बना हुआ है।

भाषा और व्याकरण ।

मन में जो भाव उदित होते हैं, वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं। मन की बातों को प्रकट करने का प्रधान उपाय भाषा है। सङ्केतों, अर्थात् इशारों, से भी मन के भाव प्रकट किये जा सकते हैं; पर यह उपाय अप्रधान है। इशारों से वह काम नहीं हो सकता जो भाषा से होता है। इससे, मनोभाव प्रकट करने का प्रधान साधन भाषा है। जिस तरह मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और लता आदि की उत्पत्ति, वृद्धि और विनाश होता है, उसी तरह भाषा का भी होता है। भाषायें भी उत्पन्न होकर वृद्धि पाती हैं और कालान्तर में विनष्ट हो जाती हैं। मनुष्य और पशु पक्षी आदि की उम्र देश, काल, अवस्था और शरीर-बन्धन के अनुसार जुदा जुदा होती है। भाषाओं की भी उम्र, अनेक कारणों से, जुदा जुदा होती है। कोई भाषा सौ वर्ष, कोई दो सौ वर्ष, कोई पाँच सौ वर्ष और कोई हज़ारों वर्ष तक जीती रहती है। आहार और विहार के परिमाण को परिमित रखने और आरोग्य-शास्त्र के नियमों का उल्लंघन न करने से आदमी अधिक समय तक जीता रहता है; अल्पायु नहीं होता। इसी तरह व्याकरण के नियमों से भाषा के कलेवर को दृढ़ करने से उसका भी आयुर्बल बढ़ जाता है।

शब्दों के समूह का नाम भाषा है। शब्दों के उत्पन्न होने के बाद व्याकरण उत्पन्न होता है। पहले शब्द, तब अनुशासन—पहले साहित्य, तब व्याकरण। पाणिनि का एक सूत्र है "अथ शब्दानुशासनम्"। इसका नाम है अधिकारसूत्र। यहां "अनुशासन" में जो "अनु" उपसर्ग है वह इस बात को सूचित करता है कि शब्दों के अनन्तर उनका शासन किया गया है। अर्थात् पाणिनि ने सदा के लिए यह शब्दशास्त्र नहीं बनाया; किन्तु उनके समय तक शब्दों के जैसे प्रयोग होते थे, उन्हींका उन्होंने अनु-धावन किया है—उन्हींके प्रयोगसम्बन्धी नियम उन्होंने बना दिये हैं।

व्याकरण वह शास्त्र है जिसमें शब्दों और वाक्यों के परस्पर सम्बन्ध के अनुसार अपेक्षित अर्थ के जानने के नियम होते हैं। अथवा यों कहिए कि जिसके पढ़ने से ठीक ठीक लिखना और बोलना आता है। पर हम देखते हैं कि अशिक्षित देहाती व्याकरण नहीं पढ़े होते, तथापि उनकी भी बोली लोग समझ लेते हैं। अथवा स्त्रियां और बालक एकही दो किताब पढ़कर, बिना व्याकरण पढ़ेही, पत्र लिखने लगते हैं और उनके लिखने का मतलब हम लोग समझ लेते हैं। बोलने और लिखने का मतलब सिर्फ़ इतना ही है कि जो कुछ बोला या लिखा जाय, वह दूसरे की समझ में आ जाय। यदि यह बात हो सके तो व्याकरण की फिर क्या आवश्यकता? इस दशा में व्याकरण का महत्व बहुत कम समझना चाहिए। शब्द चाहे जैसे उलट फेर कर रक्खे जायँ, यदि उनमें कही गई बात समझ में आजाय तो व्याकरण अपने घर बैठा रहे। "गो-दुग्ध," "दूध गाय का," और "गाय का दूध" इन तीनों प्रयोगों का अर्थ समझ में आता है। यदि व्याकरण इसलिए हो कि उसकी सहायता से लोग प्रयुक्त भाषा का अर्थ ठीक ठीक समझ सकें तो व्याकरण को चाहिए कि वह इन तीनों प्रयोगों को शुद्ध बतलावे; क्योंकि तीनों से तद्गत अर्थ का बोध होने में कोई बाधा नहीं आती। एक और उदाहरण लीजिए। एक प्रान्त के लोग बोलते हैं—"हम जे बात नाँई जानत"। दूसरे प्रान्त के बोलते हैं—"हम इस बात को नहीं जानते"। तीसरे प्रान्त के बोलते हैं—"हम यह बात नहीं जानित"। अपने अपने प्रान्त में तीनों प्रयोग शुद्ध हैं—और व्याकरण के अनुसार शुद्ध हैं—क्योंकि व्याकरण, प्रयुक्त शब्दों और वाक्यों का अनुशासन मात्र है। पर ये वाक्य अपने से भिन्न प्रान्तवालों की दृष्टि में ज़रूर

श्रीमान् प्रिंस ऑफ़ वेल्स।

खटकते हैं। अतएव व्याकरण की आवश्यकता सिर्फ़ इसलिए है कि नियम-रचना के द्वारा सब प्रान्तों के लिए वह एक सी भाषा सङ्कठित करे। व्याकरण की सहायता से भाषा को स्थिरता आजाती है और वह अधिक दिन तक जीवित रहती है। व्याकरण के नियमों को जानकर लोग अतीत साहित्य को अच्छी तरह समझ सकते हैं। नया नया साहित्य हमेशा उत्पन्न हुआ करता है; नई नई रचनारीति हमेशा निकला करती है। इस कारण, किसी भी व्याकरण के नियम सर्व-व्यापक नहीं हो सकते। तथापि उनसे यह लाभ अवश्य होता है कि जिस समय तक के साहित्य को लक्ष्य करके जो व्याकरण बनता है उस समय तक की रचना के समझने में बहुत सुभीता होता है।

बहुत दिन से हिन्दी भाषा लिखी जाती है। पर इसका एक भी सर्वमान्य व्याकरण अभी तक नहीं बना। इसका फल यह हुआ है कि पचास वर्ष की पुरानी भाषा आजकल की भाषा से नहीं मिलती। यहां तक कि वर्तमान समय में भी एक ही वाक्य को एक लेखक एक तरह लिखता है, दूसरा दूसरी तरह, तीसरा तीसरी तरह। एक अख़बार की भाषा दूसरे की भाषा से नहीं मिलती और दूसरे की तीसरे की भाषा से। इससे क्या हुआ है कि भाषा को अनस्थिरता प्राप्त हो गई है। और बहुत सम्भव है कि यदि यही दशा बनी रही तो आज से सौ वर्ष बाद के लोग आज कल की भाषा के बहुत से वाक्यों को न समझ सकें।

लिखने और बोलने की भाषा में कुछ भेद होता है। लिखने की भाषा थोड़ी बहुत अस्वाभाविक होती है और लेखक के प्रयत्न और परिश्रम से सिद्ध होती है। पर बोलने की भाषा स्वाभाविक होती है। उसके प्रकाशन में किसी तरह की चेष्टा नहीं दरकार होती। लिखने की भाषा अधिक दिनों तक एक रूप में रहती है। बोलने की भाषा में बहुत शीघ्र शीघ्र फेरफार होते रहते हैं। इसलिए कथित भाषा चिरकाल तक एक रूप में नहीं रहती। पर हैं दोनों प्रकार की भाषायें नश्वर—नाशवान्। यह नहीं कि वे हमेशा एकसी बनी रहें।

मनुष्य और पशु-पक्षी आदि जीवधारियों की तो कोई बात ही नहीं, स्वयं यह संसार ही नश्वर है। उसमें दिन रात परिवर्तन हुआ करता है। जो चीज़ आज है वह कल नहीं, जो कल है वह परसों नहीं। पर इस नश्वरता से क्या किसीको कोई तकलीफ़ होती है? नहीं। समय के अनुसार मनुष्य की इच्छा और अपेक्षा में भी अन्तर होता जाता है। इससे उसे सांसारिक परिवर्तन नहीं खलते। भाषा का भी यही हाल है। जो भाषा सौ वर्ष पहले थी वह अब नहीं है; जो अब है वह आगे न रहैगी। देश, काल और मनुष्य की स्थिति के अनुसार उसमें रद बदल हुआ ही करता है और बराबर हुआ करेगा। उसे कोई रोक नहीं सकता। परिवर्तन होना ईश्वरीय नियम है। उसकी प्रतिबन्धकता कौन कर सकैगा? परन्तु भाषा की नश्वरता और परिवर्तनशीलता से मनुष्य की कोई हानि नहीं। जो भाषा जिस समय होती है, उसीमें वह अपने मनोभाव प्रकट करता है। आज की, और आज से दो सौ वर्ष आगे की, भाषा में जितना भेद हो जायगा, उतना ही भेद मनुष्यों में भी हो जायगा। अतएव, सहज में, उनको भाषा का भेद ही न मालूम होगा। मालूम होगा तब जब वे अतीत और वर्तमान भाषाओं का परस्पर मुक़ाबला करैंगे। जैसे जैसे मनुष्य की स्थिति में परिवर्तन होता है, वैसे ही वैसे भाषा में भी परिवर्तन होता है। भाषा मनुष्य की सहचारिणी है। यदि मनुष्य अपनी स्थिति में परिवर्तन होना रोक दे तो भाषा में परिवर्तन होना आपही रुक जाय। पर यह बात मनुष्य के वश की नहीं।

व्याकरण, भाषा की वृद्धि का अवरोधक है। वह भाषा की सजीवता का नाश करनेवाला है। भाषाओं के भी जीवन की सीमा होती है। वे भी उत्पन्न होकर बढ़ती हैं और प्रतिकूल समय आते ही नाश को प्राप्त हो जाती हैं। जो भाषा उन्नति

कर रही है—बढ़ रही है—उसमें व्याकरण को पख लगाना मानों उसकी बाढ़ को रोक देना है। व्याकरण एक प्रकार की बेड़ी है। भाषा के पैरों से उसका योग होते ही भाषा बेचारी भयभीत होकर जहां की तहां रह जाती है। उसकी सारी सञ्चरणशीलता चली जाती है। इस कारण, बोलने की भाषा को व्याकरण की शृङ्खला से बाँधने की ज़रूरत नहीं। उसे यथेच्छ सञ्चरण करने देना चाहिए। ग्रैर उसका व्याकरण बन भी नहीं सकता। क्योंकि जो भाषा परिवर्तनशील है उसका व्याकरण बनावैगा कोई कितनी दफ़ा? जो प्रयोग, या जो वाक्य, या जो महाविरा ग्राज कल व्याकरण-सिद्ध ग्रैर सर्वसम्मत है, वही कुछ काल बाद निषिद्ध माना जायगा। तो क्या उस समय फिर एक नया व्याकरण बनैगा? नहीं, यदि इस तरह नये नये व्याकरण बनते रहेंगे तो ग्रनन्त व्याकरणों की ज़रूरत होगी।

पर जो भाषा लिखी जाती है उसकी बात दूसरी है। जिस भाषा में बड़े बड़े इतिहास, काव्य, नाटक, दर्शन, विज्ञान ग्रैर कलाकौशल से सम्बन्ध रखनेवाले महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जाते हैं, उसका शृङ्खलाबद्ध होना बहुत ज़रूरी है। उसका व्याकरण बनना चाहिए। लिखित भाषाही में ग्रन्थकार अपने कीर्तिकलाप को रखकर अपना नश्वर शरीर छोड़ जाते हैं। व्याकरण ही उस कीर्ति का प्रधान रक्षक है। विविध विषयों पर ग्रन्थ लिखनेवाले ग्रन्थकारों के अनुभव, खोज, परीक्षा ग्रैर विचारों से भावी सन्तति को चिरकाल तक तभी लाभ पहुँचेगा जब ग्रन्थों की भाषा व्याकरण के नियमों के द्वारा दृढ़ कर दी जायगी। व्याकरण का नियमन भाषा की उन्नति का प्रतिबन्धक अवश्य है। पर यदि लिखने की भाषा उसका आश्रय लेकर अपनी परिवर्तनशीलता को न रोकैगी तो उससे समाज की बड़ी हानि होगी। क्योंकि, परिवर्तन होते होते कोई समय ऐसा ग्रावेगा जब पुरानी भाषा को लोग बिलकुलही न समझ सकेंगे। ग्रतएव उस भाषा में भरे हुए ज्ञान-समूह से वे लोग वञ्चित रह जायँगे। पुरानी भाषाग्रों के भी जाननेवाले हुग्रा करते हैं परन्तु बहुत थोड़े। इस समय पाली ग्रैर पुरानी प्राकृत भाषाग्रों के जाननेवाले कितने हैं? दो चार ग्रादमियों के प्राचीन-भाषाभिज्ञ होने से सारे समाज को लाभ नहीं पहुँच सकता। पाली ग्रैर प्राकृत को जाने दीजिए। रासो की भाषा को ग्राप देखिये। उसमें कितने अपरिचित शब्द भरे हुए हैं। छ सात सौ वर्ष में तो यह दशा है; हज़ार दो हज़ार वर्ष में यदि भाषा की वर्तमान स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही, तो रासो बिलकुल ही समझ में न ग्रावैगा। ग्रैर सम्भव है, तुलसी, सूर ग्रैर बिहारी की भाषा भी किसी समय, भविष्यत् में, लोगों को वैसी ही ग्रटपटी मालूम हो जैसी रासो की भाषा इस समय हम लोगों को मालूम होती है।

इन्हीं कारणों से ग्रन्थकार ग्रैर समाज दोनों के लाभ के लिए यह बात बहुत ज़रूरी है कि लिखित भाषा, कथित भाषा की अपेक्षा, अधिक समय तक स्थायी रहै। चिरकाल तक उसे स्थायी करने का एक मात्र साधन व्याकरण है। यदि व्याकरण अपने ग्रखण्डनीय नियमों से उसे बाँध दे तो वह उसी ग्रवस्था में बहुत काल तक बनी रहै। वैदिक काल से ग्राज तक हमारे पूर्वज कौन कौन सी भाषायें बोलते रहे, इसका पता लगाना इस समय कठिन है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि तब से ग्राज तक ग्रनेक भाषायें बोली गईं। तथापि वे सब प्रायः लुप्त हो गईं। इस देश की पुरानी भाषाग्रों में से कोई भाषा विद्यमान भी है? है। कौन? संस्कृत भाषा। वह लिखित भाषा है। किसी समय वह बोली भी जाती रही होगी। पर जब से वह व्याकरण के दृढ़तम नियमों से प्रतिबद्ध हुई, तब से वह स्थिर हो गई। इसका फल यह हुग्रा कि हम ग्राज उसे प्रायः उसी रूप में देखते हैं जिस रूप में वह कई हज़ार वर्ष पहले थी। वाल्मीकि, व्यास, शङ्कर, कालिदास, भारवि ग्रै

भवभूति आदि ने इसी भाषा में ग्रन्थरचना की और उनके ग्रन्थों को संस्कृत व्याकरण की सहायता से हम लोग अब भी अच्छी तरह समझ सकते हैं। पाली और प्राकृत भाषाओं में भी अनेक अच्छे अच्छे ग्रन्थ हैं। इन भाषाओं का व्याकरण भी है। परन्तु ये अशिक्षित और ग्राम्य लोगों की भाषायें थीं। उनका व्याकरण अपूर्ण है। उनमें कई एक वर्ण ही नहीं हैं। इसीलिए वे चिरकाल तक सजीव दशा में नहीं रहीं। लिखित भाषा की सजीवता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि वह अधिक दूर तक व्यापक है। जो भाषा जितनी ही अधिक व्यापक होती है, जिस भाषा का प्रचार जितने ही अधिक प्रान्तों में होता है, जो भाषा जितनीही अधिक लोगों की समझ में आती है, वह भाषा उतनीही अधिक सजीव समझी जाती है।

हिन्दी में आज तक कोई अच्छा व्याकरण नहीं। व्याकरण कई हैं। पर सब छोटे छोटे हैं। किसी में कुछ कम है, किसी में कुछ। फिर जो कुछ है उसका भी सर्वांश सर्व-सम्मत नहीं है। ऐसा एक भी व्याकरण नहीं जिसमें सब बातों का विचार किया गया हो। इसीसे हिन्दी की दशा अनस्थिर हो रही है। एक तो हिन्दी भाषा में साहित्य का एक प्रकार से अभावही है। दूसरे उसकी अनस्थिरता उसे और बरबाद कर रही है। जिस अख़बार के उठाइए, जिस पुस्तक के उठाइए, सबकी वाक्यरचना में आपको भेद मिलैगा। व्याकरण के नियम निश्चित न होने से सब अपने अपने क्रम के ठीक समझते हैं। इसकी तरफ़ लोगों का बहुत कम ध्यान जाता है कि हमारा वाक्य व्याकरण-सिद्ध है या नहीं।

यहां पर हम व्याकरणविरुद्ध हिन्दीरचना के दो चार उदाहरण देना चाहते हैं। पर जिनकी रचना के वे उदाहरण हैं उनसे, इस कारण, हम शत वार क्षमा प्रार्थना करते हैं—चाहे वे इस समय इस लोक में हों चाहे परलोक में। इसमें बुरा मानने की बात नहीं। हम स्वयं भी बहुधा व्याकरण-विरुद्ध लिख जाते हैं। इसका कारण यह है कि व्याकरण की तरफ़ लोगों का ध्यानही कम है। और एक की देखा देखी दूसरा भी उसकी कम परवा करता है। अच्छा, अब उदाहरण लीजिए—

"मेरी बनाई वा अनुबादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों के श्री बाबू रामदीन सिंह 'खड्गविलास' के स्वामी का कुल अधिकार है और किसी के अधिकार नहीं कि छापै।

२३ सितम्बर १८८२—हरिश्चन्द्र।"

इस वाक्य में 'पुस्तकों' के आगे कर्म्म का चिन्ह 'के' विचारणीय है। "पुस्तकों के * * * स्वामी का कुल अधिकार है"। यह वाक्य व्याकरण-सिद्ध नहीं। यदि 'के' के आगे 'छापने का' ये दे शब्द आ जाते तो वाक्य की शिथिलता जाती रहती। फिर छापै' के पहले एक सर्वनाम भी अपेक्षित है। यहां पर मतलब 'पुस्तकों के छापै' से है। पर यदि सर्वनाम भी कोई चीज़ है तो 'पुस्तकों के' की जगह पर 'उन्हें' या 'उनको' ज़रूर आना चाहिए। सम्भव है, बाबू हरिश्चन्द्र ने इस वाक्य के ठीक लिखा हो, पर छापेवालों की असावधानी से ये त्रुटियां रह गई हों। हिन्दी लेखकों में एक बात और भी हम बहुधा व्याकरण-विरुद्ध देखते हैं। वह ब और व का अभेद है। कहीं ब की जगह व हो जाता है और कहीं व की जगह ब। ऊपर के अवतरण में जो 'अनुबादित' शब्द है उसमें 'वा' की जगह 'बा' हो गया है। पर जिस पुस्तक की पीठ पर यह नोटिस छपी है, उस के नाम "बकरी विलाप" की बकरी में ब की जगह व होगया है। ब और व में भेद है। यदि भेद न होता तो एक के बदले दे वर्णों की ज़रूरत ही क्या थी? सामासिक शब्दों के इकट्ठा लिखने की तरफ़ भी लोगों का कम ध्यान है। 'बकरी विलाप' एक सामासिक शब्द है। पर हरिश्चन्द्र जी की पुस्तक में, जो १८८६ की छपी हुई है, उसके दे खण्ड कर दिये गये हैं।

"धरती पर अनेक देश हैं, और उनमें मनुष्य बसते हैं। परन्तु सब (१) देश के लोगों की एक सी बोली नहीं है।"—बालबोध। राजा शिवप्रसाद।

"बिजली कुछ बादलों ही में नहीं रहती। थोड़ी बहुत (२) सब जगह और अक्सर चीज़ों में रहा करती है। यहां तक कि (३) हमारे और तुम्हारे बदन में भी है। और कलों के ज़ोर से भी (४) निकल सकती है"।—विद्याङ्कुर, २३वीं आवृत्ति। राजा शिवप्रसाद।

"औरंगज़ेब ने तख़्त पर बैठ कर अपना लक़ब आलमगीर रक्खा। मुल्तान के पास तक (५) दाराशिकोह का पीछा किया। लेकिन जब (६) सुना कि दाराशिकोह मुल्तान से सिन्ध की तरफ़ भाग गया और शुजा बंगाल से आता है, फ़ौरन (७) इलाहाबाद की तरफ़ मुड़ा।"—इतिहास-तिमिरनाशक १। राजा शिवप्रसाद।

इन अवतरणों में (१) 'सब देश' की जगह 'सब देशों' क्यों न हो? (२) 'थोड़ी बहुत' के आगे 'बिजुली' क्यों न हो? और जहां (३) और (४) अङ्क हैं, वहां 'वह' क्यों न हो? (५) और (६) की जगह 'उसने' और (७) की जगह 'वह' भी अपेक्षित है। कर्तृपदों का ऐसा समूल-संहार शायद ही और किसी लेखक की इबारत में पाया जाय। यदि इस तरह की इबारत अच्छे मुहाविरे में गिनी जाय तो नमः शब्दशास्त्राय!

"यंत्रालयाध्यक्ष महाशय की इस पर ऐसी कृपा हुई कि आज एक वर्ष में छाप कर अब आप लोगों के हस्त गत होने के योग्य किया है।"—कादम्बरी। गजाधरसिंह।

इस अवतरण में 'छाप कर' या 'किया है' के पहले 'इसे' या 'इसको' शब्द अपेक्षित है। 'किया है' का कर्म्म ज़रूर होना चाहिए। उसके बिना वाक्य लँगड़ा मालूम होता है। 'किया है' क्रिया का कर्त्ता कौन है? यंत्रालयाध्यक्ष महाशय। पर सकर्मक क्रिया के कर्ता के आगे कर्ता का चिन्ह 'ने' आना चाहिए। यथा—मैंने काम किया, आपने फल खाया, उन्होंने ग्रन्थ लिखा, इत्यादि। अतएव 'कृपा हुई' के बाद कहीं पर 'आपने' या 'उन्होंने' की ज़रूरत जान पड़ती है। अथवा यदि यह वाक्य दे टुकड़ों में बाँट दिया जाता और 'किया है' के लिए 'ने'-युक्त कर्ता रख दिया जाता, तो भी वाक्य का ढीलापन जाता रहता। किसी किसी का मत है कि सकर्म्मक और अकर्म्मक दोनों तरह की क्रियाओं के लिए एक ही प्रकार का कर्ता हो सकता है। यथा—

हम जब घर गये, लड़के को बीमार देखा।

यहां पर 'देखा' और 'गये' दो प्रकार की क्रियायें हैं; पर उनका कर्ता 'हम' 'गये' के लिए भी है और 'देखा' के लिए भी। सकर्म्मक 'देखा' के लिए 'हमने' की ज़रूरत नहीं समझी गई। इस तरह का प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है। पर व्याकरण सिर्फ़ अपने समय तक की भाषा के मुहाविरों का नियमन करता है। अतएव यदि सब लेखक इस तरह के प्रयोगों को साधु मान लें तो कोई आपत्ति की बात नहीं।

"अँग्रेज़ी में सब दफ़्तर अँग्रेज़ी में हैं जो अँग्रेज़ों की भाषा है। यह चूतियापन्थी नहीं कि आप जिस भाषा को स्वप्न में भी नहीं देखा उसमें दफ़्तर हो। * * * फिर आप अङ्गरेज़ी अख़बारों को, जो आपको सरासर गालियां देते हैं और नित्य बासी मुँह आपके राज्य का सत्यानाश चाहते हैं, उन्हें तो ख़रीदते हैं। * * * * अङ्गरेज़ी अख़बार तो ख़ास इसी वजह से लिये जाते हैं कि वह रियासत के ख़िलाफ़ न लिखें और उर्दू अमलावालों के लिये लेते हैं।"—भारतेन्दु ३-७। श्रीराधाचरण गोस्वामी।

"आप जिस भाषा को स्वप्न में भी नहीं देखा"। इसमें 'आप' के आगे एक 'ने' दरकार है। तीसरे वाक्य, "आप अङ्गरेज़ी अख़बारों को * * * उन्हें तो ख़रीदते हैं" में 'उन्हें' शब्द अधिक है। चैाथे वाक्य के पूर्वार्द्ध में 'लिये जाते

हैं' कर्म्मकर्तृवाच्य प्रयोग, पर उत्तरार्द्ध में 'लेते हैं' कर्तृवाच्य। यदि उत्तरार्द्ध में कर्तृवाच्य ही लिखना था तो कर्ता 'हम' लिखना चाहिए था। चौथे वाक्य में 'अङ्गरेज़ी अख़बार' बहुवचन में हैं; परन्तु उनके लिए आया हुआ सर्वनाम 'वह' एकवचन में। 'वह' की जगह 'वे' क्यों न हो? हम देखते हैं कि लोग 'वह' शब्द को बहुवचन में भी लिखते हैं और एकवचन में भी। यदि अधिक लेखकों को 'वे' की जगह भी 'वह' ही लिखना अच्छा लगता हो तो वही सही। इस दशा में व्याकरण बनाने वालों को चाहिए कि वे 'वह' को एकवचन और बहुवचन दोनों में रक्खें। ऊपर के अवतरण में जो शब्द पतले अक्षरों में छपा है, वह अत्यन्त ग्राम्य है। कोई भी सम्पादक किसी राजा के सामने वैसा शब्द अपने मुँह से न निकालैगा।

"यह एक पुस्तक नागरी में है। * * * * जिनको ये दोनों पुस्तक लेनी हों * * * शाहजहांपुर से मँगा लें। * * * तृतीयभाग में निषेधकों के आपत्तियों और कल्पनाओं के विधिपूर्वक उत्तर हैं।"—काशीनाथ खत्री, सिरसा।

'पुस्तक' के पहले 'एक' शब्द अनावश्यक जान पड़ता है। 'दोनों पुस्तक' की जगह 'दोनों पुस्तकें' क्यों न हो? 'आपत्ति' और 'कल्पना' शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। अतएव उनके सम्बन्ध के सूचक चिन्ह 'के' की जगह स्त्रीलिङ्ग 'की' होना चाहिये।

इस तरह की सारी त्रुटियों को हम मुहाविरा नहीं समझते। यदि वे सब मुहाविरा समझ ली जायँगी तो मुहाविरा की परिभाषा के बाहर शायद एक भी त्रुटि न रह जाय। सभी उसमें आ जायँगी। हम मुहाविरा के ख़िलाफ़ नहीं। मुहाविरा ही भाषा का जीव है। पर उसकी सीमा का होना आवश्यक है।

अब हम अङ्गरेज़ी, संस्कृत, और बँगला आदि भाषाओं के व्याकरण-सम्मत वाक्यों के कुछ उदाहरण देना चाहते हैं। इन उदाहरणों में कर्ता, कर्म्म, क्रिया, लिङ्ग, वचन और विभक्ति आदि सम्बन्धी कोई दोष नहीं हैं।

अङ्गरेज़ी।

"Absolute Silence falls. The wind drops. Plants close their leaves for sleep. Animals seek resting places as on the approach of night; birds hide in the tree-tops, and fowls go to roost. The night plants open their petals; bats emerge; stars appear. The air grows more chill, for the temperature has suddenly fallen, and the wind has dropped."—*Pearson's Magazine*, August 1905.

संस्कृत।

पतिरवोचत्—"यथासम्भवं त्वरितमहं प्रत्यावर्तिष्ये। सर्वमेवाहं ममास्थामनुपस्थितौ तुभ्यं विसृजामि, आशंसे च त्वं तथा प्रयतिष्यसे यथास्माकं बहुमतेयं वत्सा न क्लिश्यत इति"।

माताकथयत्—"भद्रं वत्से, पिता तावत् ते प्रयातः, त्वमिदानीं जनन्या सह सुशीलशिशुरिव गृहं रक्षिष्यसि"।

"एवं, परन्तु प्रत्यावृत्ते ताते, उपायनमेकं मे प्रदातुं न त्वं जननि तं प्रार्थयिष्यसे?"

—मित्रगोष्ठी-पत्रिका, २-२।

बँगला।

"राखालेर स्त्री मृत्युशय्याय। डाक्तार कविराज विदाय लइयाछेन; अवशिष्ट परमायु बड़जोर २।३ घण्टा मात्र। क्रन्दनरत आत्मीय स्वजन मुमुर्षु के घिरिया आछेन। मुमुर्षु चक्षु उन्मीलित करिया सकलेर दिके चाहिया चाहिया दृष्टि फिराइया लइतेछिलेन। राखालेर पिता परलोकयात्रीर मनोभाव बूझिया पुत्र के डाकिया बलिलेन, 'राखाल, आमरा बाहिरे याइतेछि; तुमि एइ खाने एकटु थाक'। सकले बाहिरे गेलेन; राखाल स्त्रीर शियरे बसिल"।—प्रवासी, ५-४।

इस अवतरण में 'मुमुर्षु' शब्द ज़रा विचारणीय है। वह 'मुमूर्षु' क्यों न हो?

मराठी ।

"पार्वती बाई कांहींच बोलली नाही। फक्त हंसल्यासारखं मात्र तिनें केलें। त्या दोघी निघाल्या। त्यांच्या मागें माग तीही चालली; पण त्यांची सोबत वाडीच्या दारापर्यंत च होती। दारातून पडल्या बरोबर त्या फणसवाडी कडे वळल्या आणि ही त्याच्या उलट बाजूला चालली। ती गोष्ट ऐकल्यापासून तिच्या अन्तःकरणांत एक दम लख्ख उजेड पडल्यासारखें झालें।"
—मनो-रञ्जन आणि निबन्धचन्द्रिका—खरीं की खोटी।

हिन्दी।

"हे लार्ड कर्ज़न, तुम चले ही जाओगे। हम जानते हैं, कि तुम बड़े आत्माभिमानी हो,—मनाने से भी न मानोगे। तुम हमें पहचानो वा न पहचानो; किन्तु हमने तुम्हें पहचान लिया है; हमने तुम्हें समझ लिया है; हम तुम्हें जान गये हैं। तुम तेजस्वी हो; तुम आत्माभिमानी हो।"

जैसे ग्रैार ग्रैार भाषाओं के अवतरण व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध ग्रैार पूर्ण हैं, वैसेही ऊपर का हिन्दी का अवतरण भी व्याकरण-सम्मत भाषा का बहुत अच्छा नमूना है। उसे हमने हिन्दी के एक समाचारपत्र से लिया है। इस अवतरण के प्रत्येक वाक्य में अपेक्षित कर्ता, कर्म्म ग्रैार क्रिया आदि, व्याकरण के अङ्ग, विद्यमान हैं। किसीकी त्रुटि नहीं। इसके प्रत्येक वाक्य का पदपरिचय यदि किया जाय तो अच्छी तरह से हो सकता है। जो वाक्य पूर्ण विराम से नहीं किन्तु अर्द्ध विराम (;) से भी पृथक् किये गये हैं, उनके लिए भी कर्तृपद अलग अलग है। इससे वाक्य में ओजस्विता आगई है। यह ओजस्विता विशेष करके तुम, तुम्हें, हम, हमें ग्रैार हमने आदि शब्दों की पुनरुक्ति से उत्पन्न हुई है। "हम तुम्हें जान गये हैं" को जगह यदि "हमने तुम्हें जान लिया है" होता तो यह ओजस्विता कुछ ग्रैार बढ़ जाती; क्योंकि, ऐसा करने से इस वाक्य का मेल इसके पहले के दो वाक्यों से मिल जाता।

जिस लेखक ने ऐसी अच्छी हिन्दी लिखी है, उसीकी हिन्दी का एक ग्रैार नमूना देखिए—

"किसीसे नाराज़ होना वा विद्वेष करना उचित नहीं है। (१) फिर तुमसे नाराज़ क्यों कर हो सकते हैं? हमें बिना जाने पहचाने तुम स्वदेश चले। * * * (२) हमें समझ लेते तो बड़ी आशा होती। * * * यह कहकर सन्यासी चले गये। ३) गाँव में फिर दिखाई न दिये। * * * (४) उत्तमो ने उन आदमियों के साथ दो गांव को छान डाला; पर बालिका का पता कहीं न लगा। * * कर्नल इमरसन ने इस बात को मजिस्टर के पास पेश किया। (५) उन्होंने जज के पास भेज दिया।"

(१) इस वाक्य में कर्तृपद 'हम' अपेक्षित है; (२) में 'तुम'; ग्रैार (३) में 'वे'। (४) में गाँव की जगह बहुवचन 'गावों' होता तो अच्छा होता। (५) में सर्वनाम 'उसे' या 'उसको' रह गया है। इसके पहले के उदाहरण में कर्ता ग्रैार कर्म्म की पुनरुक्तियां हुई हैं; वे यदि न होतीं तो भी वाक्य-बन्ध न बिगड़ता। परन्तु इस अवतरण में, जहां कर्ता ग्रैार कर्म्म आदि की ज़रूरत थी, वे एक दम ही छोड़ दिये गये हैं। इससे यह नहीं सूचित होता कि लेखक को उनका प्रयोग नहीं आता, या वह व्याकरण नहीं जानता। नहीं, ये दोनों बातें नहीं। बात यह है कि हिन्दी-भाषा अभी अनस्थिर दशा में है। व्याकरण के नियमों की तरफ़ किसीका विशेष ध्यान ही नहीं है। इन त्रुटियों के रहते भी वाक्यों का मतलब समझने में बाधा नहीं आती। परन्तु यदि इसी प्रचार पर इस तरह की इबारत लिखी जायगी तो भाषा को कभी स्थैर्य्य आने का नहीं। सब लोग मनमानी भाषा लिखते रहेंगे ग्रैार व्याकरण के नियम व्यर्थ हो जायँगे।

हम यह कह आये हैं, कि हम मुहाविरे के ख़िलाफ़ नहीं। परन्तु जिस तरह की भाषा के नमूने हमने ऊपर दिये, याद रखिए, वे हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकों के हैं। वे यदि सभी मुहाविरे समझे जायँगे तो, फिर, सारा शब्दसमूह ही मुहाविरा-रूपी क़िले के भीतर सुरक्षित हो बैठैगा। पर ऐसा होना उचित नहीं; मुहाविरे की भी सीमा है। यह ज़रूर है कि कुछ मुहाविरे ऐसे हैं जिनमें कर्ता और कर्म्म आदि पदों को स्पष्ट रखने की ज़रूरत नहीं होती। वे गुप्त रहते हैं। उनके गुप्त रहने ही से वाक्य में शोभा आती है। यथा—

(१) सुनते हैं, राजपूताना में अकाल पड़ा है।

(२) दामोदर, देर मत करो; हमें दफ़्र जाना है।

(३) कानपुर से एक नया अख़बार निकला है। चल जाय तो है।

इन वाक्यों में 'सुनते हैं', 'देर मत करो' और 'चल जाय' के कर्तृ पद लुप्त हैं और उनका अदर्शन कान को खटकता भी नहीं। इससे ऐसे वाक्यों की गिनती मुहाविरे में हो सकती है। पर, सब कहीं मुहाविरे के बल पर असंयत भाषा लिखना मानो व्याकरण को तिलाञ्जुलि देना और भाषा की अनस्थिरता को बढ़ाना है।

आजकल कुछ नये प्रकार के प्रयोग दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए नीचे के वाक्य, जिन्हें हम हिन्दी के अख़बारों से उद्धृत करते हैं, देखिए—

(१) लाचार फ़ौज की सहायता से गिरजा घेर लिया और उसको पकड़ कर क़ैदख़ाने में पहुँचाया गया।

(२) एक स्त्री को सिखा पढ़ा कर उन स्त्रियों का भेद लेने के लिये भेजा गया।

(३) लार्ड किचनर को प्रसन्न करने के लिये लार्ड कर्ज़न को बेइज़्ज़त किया गया।

(४) यदि मुझे वालंटियर नहीं बनाया जायगा तो * * मैं * * अभियोग उपस्थित करूंगा।

जान पड़ता है, इस तरह के प्रयोगों को हमने उर्दू वालों से सीखा है। क्योंकि उर्दू की इबारत में इस तरह के प्रयोग बहुलता से पाये जाते हैं। लाहौर से "तरक़्क़ी" नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। उसकी अगस्त की संख्या अभी आज (३ सितम्बर, १९०५) हमारे पास आई है। उसमें इटली के प्रसिद्ध कवि दान्ते का जीवनचरित है। इस चरित के आरम्भ ही में है—

"लुत्फ़ तो तबही होता कि नज़्म को नज़्म की सूरत में दिया जाता।"

'नज़्म' यहां पर कर्म्म है। उसको दिया जाता क्या? ऊपर हिन्दी के चार उदाहरणों में से पहले में कुछ विशेषता है; शेष तीनों एकही तरह के हैं। पहले उदाहरण के वाक्य के दो भाग हैं। पहले भाग का वाच्य एक प्रकार का है और दूसरे का दूसरे प्रकार का। 'गिरजा घेर लिया' की जगह यदि 'गिरजा घेर लिया गया' होता तो वह व्याकरणसम्मत हो जाता। या यदि उसका भी रूप उत्तरार्द्ध के वाच्य का ऐसा कर दिया जाता, तो पूरा वाक्य एक सा हो जाता। इस तरह के (स्त्री को भेजा गया, लार्ड कर्ज़न को बेइज़्ज़त किया गया, आदि) वाक्यों को पण्डित केशवराम भट्ट ने अपने व्याकरण में भाववाच्य का उदाहरण माना है। क्योंकि उन्होंने 'मुझसे लड़कों को रेल पर चढ़ा दिया गया' भाववाच्य के उदाहरण में लिखा है। अच्छा, अब आप देखिए कि इस तरह के प्रयोग भाववाच्य हैं या नहीं।

संस्कृत में वाच्य चार प्रकार के हैं,—कर्तृ वाच्य, कर्म्मवाच्य, भाववाच्य और कर्म्मकर्तृ वाच्य।

कर्तृ वाच्य उसे कहते हैं जिसके कर्ता में प्रथमा और कर्म्म में द्वितीया विभक्ति होती है; और क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्ता के अनुकूल होते हैं। यथा—लड़का पुस्तक पढ़ता है; मैं चन्द्रमा देखता हूं; वे काग़ज़ काटते हैं।

कर्म्मवाच्य उसे कहते हैं जिसमें कर्ता तृतीया विभक्त्यन्त और कर्म्म प्रथमाविभक्त्यन्त होता है;

और क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्म्म के अनुकूल होते हैं। यथा—मुझसे झूठ बात न कही गई; उनसे प्रश्न का उत्तर न दिया गया; उससे सब काम न हो सके।

भाववाच्य उसे कहते हैं जिसमें कर्ता तृतीया विभक्तियुक्त होता है। इसमें क्रिया को कर्म्म की अपेक्षा नहीं रहती और वह हमेशा पुल्लिङ्ग, एक-वचन, होती है। यथा—मुझसे बैठा नहीं जाता; तुमसे चला नहीं गया; उनसे बोल नहीं आया।

कर्म्मकर्तृवाच्य* में कर्म्म ही कर्ता हो जाता है। अर्थात् कर्ता कर्म्मवत् व्यापार करता है। उसमें प्रथमा विभक्ति होती है और क्रिया के लिङ्ग और वचन, कर्ता के अनुकूल होते हैं। यथा—भोजन बनाया गया; वह पहुंचाया गया; वह भेजी गई; वे बेइज्ज़त किये गये।

इन लक्षणों को हमने संस्कृत-व्याकरण से दिया है। जिसका जी चाहे वह इन्हें वहां देख ले। या, वहां नहीं तो, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के व्याकरण में भी वह इन्हें देख सकता है। अब देखिए, पूर्वोक्त चार उदाहरण इन वाच्यों में से किसके अन्तर्गत आ सकते हैं? किसीके नहीं। वे वाक्य कर्म्मकर्तृवाच्य हैं; परन्तु कर्ता में प्रथमा की जगह द्वितीया विभक्ति है और क्रिया भाववाच्य की सी एक वचन पुल्लिङ्ग है। यदि वे इस तरह लिखे जाते—

(१) * * * वह पकड़ कर क़ैदखाने में पहुँचाई गई।

(२) एक स्त्री * * * भेद लेने के लिये भेजी गई।

(३) * * * लार्ड कर्जन बेइज्ज़त किये गये।

(४) यदि मैं वालण्टियर न बनाया जाऊंगा * * *

—तो कर्म्मकर्तृवाच्य के लक्षण से लक्षित हो जाते और उनकी सदोषता जाती रहती। हिन्दी की उत्पत्ति संस्कृत से है। इसलिए हमको यथा-सम्भव संस्कृत व्याकरण की सहायता से उसे नियन्त्रित करना चाहिए। हां, यदि पूर्वोक्त प्रकार के मुहाविरे से लेखकों को बहुतही प्रेम हो गया हो, अथवा, यदि उससे भाषा में विशेष सौन्दर्य आने को उन्हें आशा हो, तो उन्हें वे बना रहने दें। हिन्दी में वह एक विचित्र मुहाविरा होगा और पण्डित केशवराम की तरह भावी वैय्याकरणों को ज़बरदस्ती उसे किसी वाच्य के भीतर डालना पड़ैगा, या उन्हें एक नया वाच्य बनाना पड़ैगा।

संस्कृत यद्यपि हिन्दी की जननी है, तथापि हिन्दी भिन्न भाषा है; संस्कृत भिन्न। अतएव संस्कृत-व्याकरण के नियमों का प्रतिबन्ध हिन्दी को क्यों? यह दलील युक्तियुक्त है। पर जब कर्तृवाच्य, कर्म्मवाच्य और भाववाच्य, ये तीनों, हमने हिन्दी में संस्कृत-व्याकरण के अनुकूल ले लिये, तब कर्म्मकर्तृवाच्य के लेने से हमारी क्या हानि होगी सो भी तो बतलाना चाहिए।

हिन्दी में जब, तब और जो (यदि), तो के प्रयोग में भी बड़ा गड़बड़ है। उर्दू में 'जब' के साथ 'तो' बहुधा आता है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि ग़ालिब ने लिखा है,—"यह कह सकते हो, हम दिल में नहीं हैं; पर यह बतलावो कि जब दिल में तुम्हीं तुम हो तो आँखों से निहां क्यों हो?" इसमें 'जब' के साथ 'तो' का प्रयोग हुआ है। इस तरह के प्रयोग हिन्दी में भी अधिकता से देखे जाते हैं। उनके उदाहरणों की ज़रूरत नहीं। किसी अख़बार को आप उठाइए। उसमें आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिलैंगे। परन्तु ऐसे भी लेखक हैं जो 'जब' के साथ 'तब' और 'जो' या 'यदि' के साथ 'तो' का भी प्रयोग करते हैं। यथा—

(१) जब वह कमरे का हाल यथार्थ कहैगा तब तुम उसको भेज सकते हो।

* कर्म्मवत्कर्म्मणा तुल्यक्रियः ३।१।८७। कर्म्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्म्मवत्स्यात्। * * * कर्तुरभिहितत्वात्प्रथमा। पच्यते ओदनः। भिद्यते काष्ठम्।—सिद्धान्त-कौमुदी, कर्म्मकर्तृप्रक्रिया।

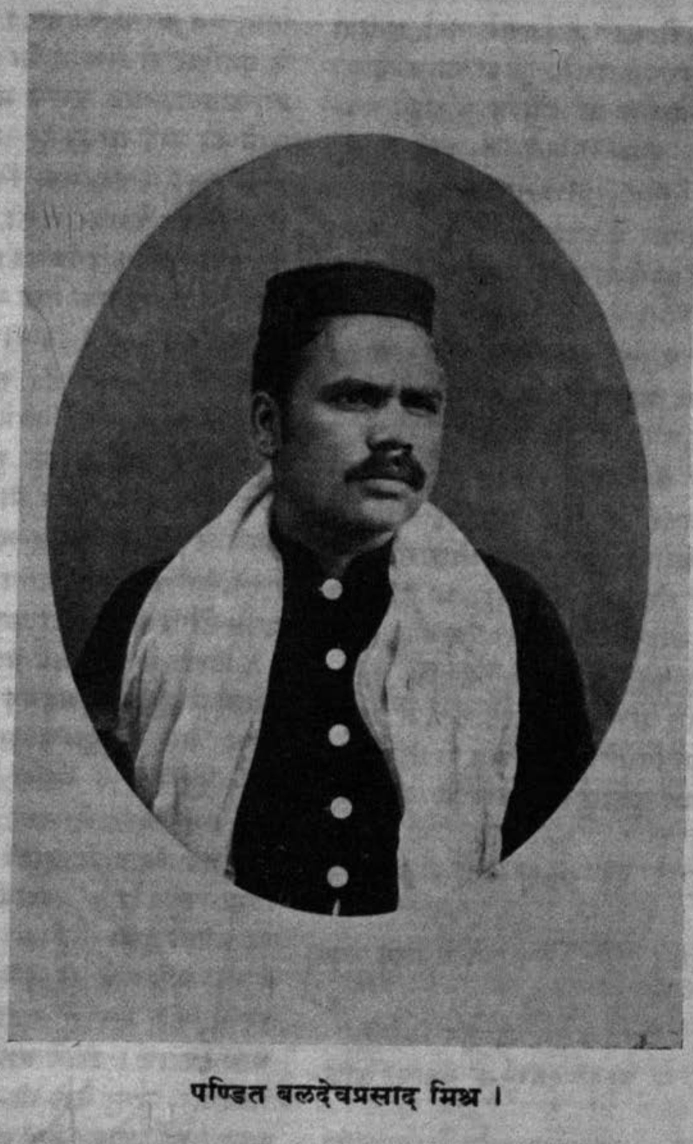

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र ।

(२) यदि वो वहां तक जाने में असमर्थ है तो नाहीं कर देगा।

आत्मविद्या—श्रीमधुसूदन गोस्वामी।

(३) जो हमें अपने देश का सच्चा प्रेम है तो अपनी मातृभूमि के कल्याण के लिए दृढ़चित्त हो खड़े हो जायँ।

(४) जब तुम कुछ करही नहीं सकते तब मूँड मार कर घर क्यों नहीं बैठे रहते?

हिन्दीप्रदीप—पं० बालकृष्ण भट्ट।

विचार्य्य शब्दों के प्रयोग में विधि-निषेध का कुछ भी बन्धन नहीं देख पड़ता। यहां तक कि 'जो' के आगे कोई कोई 'तब' का भी प्रयोग करते हैं। भाषा की यह अनस्थिरता बहुतही हानि-कारिणी है। क्या ये सभी मुहाविरे हैं और सभी शुद्ध हैं। यदि ऐसाही है तो यह कहना चाहिए कि हिन्दी-शब्द-समूह में विलक्षण ग़दर हो रहा है, और जिसे जहां जगह मिलती है वह वहीं स्थान दबा बैठता है। हम यह नहीं कहते कि कोई 'जब' के साथ 'तो' का प्रयोग न करै। यदि यह मुहाविरा अच्छा समझा जाय और सब लेखक इसे पसन्द करैं तो इसके प्रयोग में कोई बाधा नहीं आ सकती। परन्तु जितने लेखक उतने प्रकार के प्रयोगों का होना अच्छा नहीं।

'जब' और 'तब' समयवाचक हैं; पर 'जो' और 'तो' नहीं। 'जो' और 'तो' का प्रयोग वहां अधिक अच्छा लगता है जहां किसी तरह की शर्त होती है, क्योंकि उनसे शर्त ही का अर्थ निकलता है। ग़ालिब के वाक्य का अर्थ है—"जब तुम दिल में हो तो आँखों से क्यों छिपे हो?" इसमें दिल में होने की शर्त है। इसलिए 'जब' की जगह 'जो' क्यों न हो? क्योंकि मुहाविरा हो वैसा है। बहुत अच्छा, उर्दू में वैसाही मुहाविरा रहै; पर हिन्दी में क्यों? हिन्दी का साहित्य अभी बन रहा है। सर्वमान्य व्याकरण भी कोई अभी तक नहीं बना। इस कारण, जो प्रयोग अधिक सयुक्तिक और अधिक सार्थक हों, वही क्यों न काम में लाये जायँ? नीचे के वाक्य देखिए—

(१) जब तुम घर पर होगे मैं आऊंगा।

(२) जब तुम घर पर होगे तब मैं आऊंगा।

(३) जब तुम घर पर होगे तो मैं आऊंगा।

(४) जो तुम घर पर होगे, मैं आऊंगा।

(५) जो तुम घर पर होगे तो मैं आऊंगा।

(६) जो तुम घर पर होगे तब मैं आऊंगा।

इनमें से तीसरे और छठे वाक्य को छोड़ कर और कोई वाक्य नहीं खटकता। पहले और चौथे वाक्य में 'जब' और 'जो' के उत्तर-पद लुप्त हैं। इसलिए उनके विचार की ज़रूरत नहीं। तीसरे उदाहरण में समय की शर्त है और छठे उदाहरण में घर पर होने की। अतएव दोनों के अर्थ में भेद हुआ। फिर अर्थभेद के हिसाब से प्रयोगभेद क्यों न हो?

कुछ मुहाविरे ऐसे होते हैं जो बद्धमूल हो जाते हैं। उनकी रचना का विचार नहीं किया जाता। वे व्याकरण के सामान्य नियमों से बद्ध नहीं होते। उनके लिए व्याकरण को अपवाद करना पड़ता है। परन्तु 'जब', 'तब' इत्यादि के प्रयोग अभी तक बद्धमूल नहीं हुए। कोई एक तरह उनका प्रयोग करता है, कोई दूसरी तरह। इसलिए कम सयुक्तिक प्रयोग अभी परित्यक्त हो सकते हैं।

हिन्दी की अनस्थिरता के दो एक उदाहरण और देकर हम इस लेख को समाप्त करना चाहते हैं। नीचे के वाक्यों को देखिए। उन्हें एक अख़बार से हम उद्धृत करते हैं—

(१) आपको भी इस विषय में लेखनी उठाना चाहिए।

(२) इसके लिये शिक्षा लेना होगी।

(३) वह लोग * * जड़ी बूटियां इकट्ठी करते थे।

ये सब कर्तृवाच्य प्रयोग हैं। कर्तृवाच्य में क्रिया, कर्ता के अनुकूल होती है। यह बात पहले उदाहरण में है। पर दूसरे उदाहरण में क्रिया का

उत्तर भाग (होगी) कर्म्म, 'शिक्षा', के अनुकूल है; और तीसरे उदाहरण में क्रिया का पूर्वभाग (इकट्ठी) कर्म्म, 'जड़ी बूटियां', के अनुकूल है! कहीं कर्म्म के अनुकूल, कहीं कर्ता के! कहीं क्रिया का पहला टुकड़ा स्त्रीलिङ्ग हो गया, कहीं दूसरा! 'लोग' बहुवचन, 'वह' एक वचन! इन बातों के विचार की ज़रूरत है। विचार न करने से भाषा में बेतरह गड़बड़ पैदा हो जायगी।

हिन्दी को कालसह, अर्थात् कुछ काल के लिए स्थायी, करने के लिए यह बहुत ज़रूरी बात है कि उसकी रचना व्याकरण-विरुद्ध न हो; उसमें सिर्फ़ ऐसे ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो विशेष व्यापक हों, अर्थात् जिन्हें अधिक प्रान्तों के आदमी समझ सकें। देश भर में एक ही भाषा होगी या नहीं, और होगी तो कब होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। परन्तु, तब तक, हिन्दी को अधिक व्यापक बनाने में लाभ है, इस बात को सभी स्वीकार करेंगे। अतएव हिन्दी के साहित्य में प्रान्तज और क्षणभङ्गुर शब्दों का आना अच्छा नहीं। जो शब्द किसी प्रान्तविशेष के ही लोग समझ सकते हों, उन्हें प्रान्तज और जो किसी कारण-विशेष से थोड़े दिनों के लिये उत्पन्न हो गये हैं, उन्हें क्षणभङ्गुर कहते हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग न होना चाहिए। संस्कृत के सरल शब्द, और ऐसे विदेशी शब्द जिन्हें सब लोग समझते हैं, प्रयुक्त होने चाहिएं। विदेशी शब्दों का प्रयोग बुरा नहीं। संस्कृत तक में विदेशी शब्द हैं। शब्द चिरस्थायी और सबके समझने लायक़ होने चाहिएं। बस। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका संस्कृत में कुछ अर्थ है, पर हिन्दी में वे दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे शब्द सर्वथा त्याज्य हैं। बाधित, निर्भर, आन्दोलन और कटिबद्ध आदि शब्द इसी कक्षा के हैं। संस्कृत में बाधित का अर्थ है बाधा दिया गया; पर हिन्दी में लोग उसका अर्थ करते हैं, उपकृत, कृतज्ञ, अनुगृहीत! राम ने श्याम का उपकार किया। इस कारण श्याम ने राम से कहा—"आपने मेरा उपकार करके मुझे चिर-बाधित अर्थात् चिरकाल तक पीड़ित किया!" यह तो वही "यथा बाधति बाधते" वाली बात हुई। नहीं मालूम हिन्दी में किसने इस शब्द को उपकृत अर्थ में पहले पहल लिखा। ऐसे शब्दों का प्रयोग एक दम बन्द हो जाना चाहिए। 'प्रेम फसफसाया' और 'शौक़ चर्राया' आदि शिष्टताविघातक शब्दों का भी प्रयोग उचित नहीं। बहुत से लेखक संस्कृत-व्याकरण के अनुसार दूसरी भाषा के शब्दों में भी पर-सवर्ण, षत्व और णत्व का विधान करते हैं। यथा; अनजुमन की जगह अञ्जुमन, पोस्टमास्टर की जगह पोष्टमाष्टर और गवर्नमेन्ट की जगह गवर्नमेण्ट। यह अनुचित प्रतीत होता है।

इस विषय में अभी हमें बहुत बातें लिखने को हैं। परन्तु प्रबन्ध बड़ा हो गया है। इस लिए उन्हें हम फिर कभी लिखेंगे। दूषित भाषा के उदाहरण में जिनके वाक्य इस लेख में उद्धृत किये गये हैं, उनसे हम पुनर्वार क्षमाप्रार्थना करते हैं। हमने दोष दिखलाने के इरादे से ऐसा नहीं किया; सिर्फ़ अपनी बात को स्पष्टता-पूर्वक समझाने के लिए किया है। स्वयं हमारे लेखों में ऐसे ऐसे दोष एक नहीं अनेक रह जाते हैं। लिखते समय उन पर ध्यान नहीं जाता। विचारपूर्वक देखने से ही वे ध्यान में आते हैं।

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र।

जिन लोगों को हिन्दी लिखने पढ़ने का शौक़ है, वे मुरादाबाद-निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र को अवश्य जानते होंगे। इनकी बदौलत कितनी ही अच्छी अच्छी पुस्तकें हिन्दी में होगईं। ये प्रसिद्ध वक्ता पण्डित

ज्वालाप्रसाद मिश्र के छोटे भाई थे। चार पाँच दिन बीमार रहकर ७ अगस्त १९०५ को, ३६ वर्ष की उम्र में इनका शरीरपात हो गया। हिन्दी का एक अच्छा लेखक खो गया! अफ़सोस!

सात आठ वर्ष का अर्सा हुआ, जब झांसी में पहले पहले पं० बलदेवप्रसाद हमसे मिले। आपके साथ आपके बड़े भाई पं० ज्वालाप्रसाद, लाला शालग्राम और एक और कोई सज्जन भी थे। जब तक आप बैठे, बराबर साहित्य-विषयक बातें करते रहे। आपसे मालूम हुआ कि आपको गुजराती और मराठी पढ़ने का भी शौक़ है। आपने हमसे इन भाषाओं के प्रसिद्ध प्रसिद्ध अख़बारों का नाम पूछा और हमारे पास से दो एक नमूने भी उनके लिये। झांसी से आप, अपने साथियों समेत, छत्रपुर प्रस्थान कर गये। उस समय आप तन्त्रप्रभाकर नामक पत्र निकालते थे। मुरादाबाद लौटकर आपने अपने पर्य्यटन का वृत्तान्त उसमें छापा। हम लोगों की पारस्परिक भेंट का भी आपने उसमें ज़िक्र किया।

इसके तीन चार वर्ष बाद हमारे एक मित्र की बदली मुरादाबाद को हुई। उनसे मिलने के लिए हम कई दफ़ा मुरादाबाद गये। वहां पण्डित ज्वालाप्रसाद के यहां पं० बलदेवप्रसाद से भी भेंट हुई। इनसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ। हमने देखा कि जो बलदेवप्रसाद चार वर्ष पहले हमसे मराठी और गुजराती के अच्छे अच्छे अख़बारों और ग्रन्थों के नाम पूछते थे, उनके यहां इतने थोड़े समय में इन भाषाओं के कितने ही ऐसे अच्छे अच्छे ग्रन्थ, मासिक पुस्तक और अख़बार इकट्ठे होगये हैं जिनको हमने उसके पहले कभी नहीं देखा था। हमको पं० बलदेवप्रसाद के इस परिश्रम, इस विद्याव्यसन, इस उन्नति और इस पुस्तकावलोकन-प्रेम पर आश्चर्य्य हुआ। हमने उनका हृदय से अभिनन्दन किया और उनके कहने से कई एक गुजराती पुस्तकें मँगाकर उनसे लाभ भी उठाया।

हिन्दी तो पं० बलदेवप्रसाद की मातृभाषा ही थी। उसके और मराठी तथा गुजराती के सिवा आप बँगला भी अच्छी तरह जानते थे। बँगला की भी बहुत सी अच्छी अच्छी पुस्तकें हमने आपके यहां देखीं। पुस्तक-संग्रह से आपको बड़ा प्रेम था। जिन भाषाओं को आप जानते थे, उनके साहित्य-संसार में होनेवाली बड़ी बड़ी घटनाओं से भी आप खूब वाक़िफ़ थे। कोई भी महत्वपूर्ण बात ऐसी न होती थी जिसे आप न जानते हों। सुनते हैं, संस्कृत, अङ्गरेज़ी और उर्दू में भी आपकी गति थी। पर इस विषय में हम ख़ुद कुछ नहीं कह सकते।

जनवरी १९०३ में हम मुरादाबाद में थे। पं० ज्वालाप्रसाद के मकान से थोड़ी दूर पर पं० बलदेवप्रसाद रहते थे। उनके यहां जाकर हम बैठे हैं कि एक हिन्दी अख़बार आया। उसमें सरस्वती की आलोचना थी। आलोचना बुरी तरह की गई थी। आपने उसे हमको दिखाया। उसे पढ़कर कृतज्ञता-ज्ञापन-पूर्वक हमने उन्हें लौटा दिया। थोड़ी देर ठहर कर आपने उस आलोचना के विषय में अपनी राय दी जिससे आपकी सुरुचि का हमें अच्छा प्रमाण मिला।

जब जब हम मुरादाबाद जाते थे, पं० बलदेवप्रसाद अपनी एक आध पुस्तक देने की ज़रूर कृपा करते थे। हमारे मुरादाबादी मित्र को भी हिन्दी की अच्छी अच्छी किताबें पढ़ने के लिए आप दिया करते थे। लाहौर से सनातन धर्म्म का पक्षपाती एक अख़बार उर्दू में निकलता था। शायद वह अब भी निकलता है। उससे और आर्य्यसमाज के एक अख़बार से परस्पर विरोध होगया। विरोधी धार्म्मिक समाजों में अनबन रहती ही है। दोनों तरफ़ कड़े कड़े लेख लिखे जाने लगे। अन्त में कचहरी तक जाने की नौबत आई। उसमें लाहौर के अख़बार से सम्बन्ध

रखनेवालों का पराभव हुआ। इस मुक़द्में के सब काग़ज़ात आर्यसमाज के अनुयायियों ने पीछे से पुस्तकाकार छपाये। पं० बलदेवप्रसाद ने इस पुस्तक को मँगा कर बड़े चाव से पढ़ा और हमारे मुरादाबादी मित्र को भी पढ़ने को दिया। उसी दरमियान में हम भी मुरादाबाद गये। पं० बलदेवप्रसार की बदौलत हमने भी इस पुस्तक को पढ़ा। इसमें कई एक बहुत ही रोमाञ्चकारिणी और घृणित घटनाओं का ज़िक्र था। उनको पढ़कर हम दङ्ग हो गये। धर्म्मजीवी पुरुषों में इतना अनाचार! शिव शिव!

पं० बलदेवप्रसाद ने तंत्रप्रभाकर नामक एक प्रेस खोला था। उसमें आप पहले तंत्रसम्बन्धी पुस्तकें छापते थे। कुछ समय तक हरिद्वार और मुरादाबाद में तांत्रिक ग्रन्थों की बहुत धूम थी। पर कुछ दिन बाद बलदेवप्रसाद ने, किसी कारण से, यह प्रेस बन्द कर दिया और साथ ही तंत्रों के उद्धार को भी समाप्ति कर दी। तंत्रप्रभाकर नाम का अख़बार जो आप निकालते थे, उसे भी आपने कुछ दिनों में बन्द कर दिया। पं० बलदेवप्रसाद ने कुछ समय तक भारतभानु और साहित्य-सरोज आदि कई और भी अख़बारों का सम्पादन किया था।

मुरादाबाद में बहुत दिन से हिन्दी की चर्चा है। इस शहर के कई एक लेखकों की कृपा से हिन्दी में कितनी ही नई नई किताबें निकली हैं। परन्तु इन लेखकों में एक आध ऐसे दैवी महात्मा हुए जिनके कान में देवता और ऋषि-मुनि तक अद्भुत अद्भुत पुस्तकों का आशय सुना जाते थे। उसे ही ये सज्जन लिखकर प्रकाशित करते थे और उन सिद्ध पुरुषों की बदौलत नाम और दाम, दोनों, ख़ूब पैदा करते थे। परन्तु, जहां तक हम जानते हैं, पं० बलदेवप्रसाद को इस तरह का कोई देवता सिद्ध न था।

इस देश में बहुत कम लोग ऐसे हैं जिनका व्यवसाय सिर्फ़ किताबें लिखने का हो। पढ़ने वालों की कमी के कारण इस व्यवसाय से जीवन-निर्वाह कठिनता से होता है। परन्तु पं० बलदेव प्रसाद को अपनी बुद्धि और परिश्रम के बल से इसी व्यवसाय से यथेच्छ प्राप्ति होती थी। मुरादाबाद में हम डाकख़ाने के पास ठहरते थे। सुबह पं० बलदेवप्रसाद जब कभी कभी डाकख़ाने से अपनी डाक लेकर लौटते थे, तब हम बहुत सी चिट्ठियां उनकी किताबों की माँग से भरी हुई उनके पास देखते थे।

पं० बलदेवप्रसाद बड़े परिश्रमी थे। उन्होंने थोड़ी ही उम्र में बहुत सी किताबें लिख डालीं। बम्बई के वेङ्कटेश्वर प्रेस से आपका अधिक सम्बन्ध था। वहां आपको कई पुस्तकें छपी हैं। आपके अग्रज पं० ज्वालाप्रसादजी ने भी इस प्रेस के लिए कई पुराणों और काव्यों का हिन्दी अनुवाद किया है। आपके अनुवाद बहुत अच्छे हैं। उनका प्रचार भी ख़ूब है। जिस समय हम बम्बई में थे, पं० बलदेवप्रसाद का अनुवाद किया हुआ हिन्दी-राजस्थान वेङ्कटेश्वर प्रेस में छपने के लिए आया था। परन्तु किसी कारण-विशेष से वह अभी तक नहीं छपा। पं० बलदेवप्रसाद की इच्छा थी कि यदि हम फिर कभी बम्बई जायँ तो उनके इस अनुवाद को देखकर सेठ खेमराज के सामने इसकी समालोचना करें। परन्तु तब से बम्बई जाने का हमें मौक़ा ही न आया।

पं० बलदेवप्रसाद जब हमारे स्थान पर, मुरादाबाद में, आते थे, तब आप हमसे हमेशा यह पूछा करते थे कि कोई नई पुस्तक आप लाये? हमारे पास जो कोई किताब होती थी, हम दिखलाते थे। एक दफ़ा "रूलर्स आफ़ मैन काइण्ड" (Rulers of mankind) नाम की अँगरेज़ी पुस्तक को देखकर आप बहुत प्रसन्न हुए। उसकी तसवीरों पर आप मोहित हो गये और अपने मित्र आदि को दिखलाने के लिए उसे घर ले गये। आप बार बार कहते थे कि

यदि इसका हिन्दी अनुवाद हो जाय तो बहुत अच्छा हो।

इन्होंने बँगला, मराठी और गुजराती भाषा की सहायता से बहुत सी पुस्तकें लिखीं और अनुवादित कीं। पानीपत, देवी-उपन्यास, कुन्द-नन्दिनी, दण्डसंग्रह, राजस्थान, नैपाल का इतिहास, ताँतिया भील और पृथ्वीराज चौहान आदि हिन्दी की किताबें इन्हीं की हैं। संस्कृत की भी कई अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद आपने, इसी तरह, किया है। सूर्यसिद्धान्त, वाराही-संहिता, रसेन्द्र-चिन्तामणि, यन्त्रचिन्तामणि, महानिर्वाणतन्त्र, अध्यात्म रामायण और कल्किपुराण आदि उन्हीं-में से हैं। आपने मराठी-हिन्दी की एक प्राइमर (प्रथम पुस्तक) लिख कर हिन्दी जाननेवालों को मराठी सीखने का द्वार भी उन्मुक्त कर दिया है। यह पुस्तक शायद नवलकिशोर के छापेख़ाने में छपी है। आपके भाई पं० ज्वालाप्रसाद जी ने भागवत का हिन्दी में अनुवाद किया है। वेङ्कटेश्वर प्रेस में उसे छपे बहुत दिन हुए। दो तीन वर्ष हुए पण्डित बलदेवप्रसाद के नाम से भी भागवत का एक अनुवाद "भारत मित्र" प्रेस से प्रकाशित हुआ है। आपकी कई पुस्तकें "भारतमित्र" और "वेङ्कटेश्वर समाचार" के ग्राहकों को उपहार में दी गई हैं। बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बङ्कीम बाबू के उपन्यासों का बड़ा आदर है। पर उनके मालिक उन के स्वत्व की रक्षा बहुत ख़बरदारी से करते हैं। यहां तक कि वे बङ्कीम बाबू के स्फुटलेखों को भी दूसरी भाषा में अनुवादित होने की अनुमति नहीं देते; और देते भी हैं तो बहुत मुश्किल से। पर पं० बलदेवप्रसाद ने उनके भी कई उपन्यासों का अनुवाद, किसी तरह, हिन्दी में कर डाला। देवी और कुन्दनन्दिनी बङ्कीम बाबू के ही उपन्यासों का अनुवाद है। आपकी एक आध पुस्तक में मूल ग्रन्थकार का नाम भूल से रह गया है। आपने हिन्दी में कई एक नाटक और उपन्यास भी लिखे हैं। आपकी कुछ पुस्तकें अभी तक बेछपी हुई भी पड़ी हैं। पण्डित प्रतापनारायण की एक पुस्तक अप्रकाशित पड़ी थी। अभी कुछ दिन हुए उसे प्रकाशित करके पं० बलदेवप्रसाद ने बहुत अच्छा काम किया।

जबसे हमारा परिचय पं० बलदेवप्रसाद से हुआ तबसे वे अक्सर अपनी नई पुस्तकों की एक कापी हमको भेजते थे। एक बार उन्होंने नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी अपनी एक पुस्तक हमारे पास भेजी। हमें वह पुस्तक बहुत अच्छी लगी। उसके लिए हमने उनको अनेक धन्यवाद दिये। पर हमने इतना लिख दिया कि मराठी में इस विषय की अमुक पुस्तक शायद आपकी नज़र से गुज़री हो। तबसे आप हमसे कुछ विरक्त से हो गये। इसका हमें बहुत अफ़सोस है।

सुनते हैं पं० बलदेवप्रसाद जी कविता भी करते थे; परन्तु आपकी कविता हमारे देखने में नहीं आई।

पं० बलदेवप्रसाद की अकालमृत्यु से उनके कुटुम्बियों और मित्रों को बहुत दुःख हुआ है। हम उनके दुःख से दुखी हैं और उनके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्"। मरना शरीर-धारियों का स्वभावही है। पर कुसमय की मृत्यु से मृत व्यक्ति के आश्रित, सम्बन्धी और स्नेही जनों को बहुत दुःख होता है। तथापि ऐसे मामलों में मनुष्य का कुछ वश नहीं। उसे धैर्य्य ही धरना चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पं० बलदेवप्रसाद के शरीर के साथ हिन्दी का एक बहुत अच्छा लेखक हमेशा के लिये तिरोहित होगया।

कैथी ।

(प्रतिवाद)

अगस्त की "सरस्वती" में "देशव्यापक लिपि" के लेख में नयी कैथी का कुछ वर्णन है। मैं सम्पादक साहिब का बहुत शुक्रगुज़ार हूं, क्योंकि मुझे प्रतीति है कि जहां तक इस बात की चर्चा हो जाए और उस पर सोच बिचार किया जाए, वहां तक यह प्रसिद्ध हो जाएगा कि कैथी नागरी की सहायता दे सकती है और उसके द्वारा नागरी अधिक प्रचलित होके उन्नति पावेगी।

मैं आस्रा रखता हूं कि सम्पादक साहिब अनुग्रह करके मुझे अवकाश देंगे कि उस लेख के और कैथी लिपि के बारे में मैं दो चार बातें "सरस्वती" में प्रकाश करूं।

१. उस लेख में यह बतलाया गया है कि मेरी राय में "यदि कैथी अक्षरों का प्रयोग हो तो.........कागज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखनेवाला उसे दौड़ाता चला जाए"। यह तो भूल है, न तो मेरा यह ख़ियाल है न तो मैंने कभी ऐसा लिखा। "हिन्दूस्तान रीव्यू" में मैं ने लिखा कि "The adoption of a running hand for Hindi in which the letters might be connected without lifting the pen from the paper is beyond the range of the prcticable for the present" अर्थात् हिन्दी के लिये ऐसी लिपि अब लौं नहीं मिल सकती जिससे कागज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखी जा सकती है।

२. मैं मान लेता हूं कि संयुक्त वर्णों की सूची अपूर्ण है। यह मेरी भूल नहीं, जान बूझ के यह ऐसा किया गया है। क्या लाभ है कि बहुत संयुक्त अक्षर बनाये जाएं जो कदाचित दो चार मरतबा साल भर काम में लिये जाएं? "रिक्थ, पंक्त, अक्स" ऐसे शब्दों का लिखना कब पड़ता? जब पड़े तो "रिक्‌थ, पक्‌व, अक्‌स" क्यों न लिखे जाएं? विराम के द्वारा काम सहज से निकलता है। संयुक्त अक्षरों के बढ़ाने से कुछ लाभ नहीं। केवल उनको बनाना चाहिये जो अधिक प्रचलित हैं।

३. कैथी सीखने में न अधिक समय न अधिक परिश्रम पड़ता है। लिखना और पढ़ना दोनों बहुत सहज हैं। "सरस्वती" के लेख में यह अच्छे प्रकार से बतलाया गया है क्योंकि यों लिखा है कि "इन वर्णों में सिवा ऊपर की पाई के और कौन बड़ा फ़र्क है?" यह सर्बथा सच है और इस कारण सीखने में बहुत कम परिश्रम पड़ता है।

४. लेख में लिखा है कि "अंगरेज़ो में एक से अधिक लिपियों के होने से सीखनेवालों को—विशेष करके विदेशियों को—थोड़ी बहुत कठिनता अवश्य पड़ती है"। मैं इस बात को मानता हूं, पर यह पूछता कि क्या कोई जो अंग्रेज़ी जानता हो इस बात को प्रसन्न करे कि केवल एक लिपि प्रचलित होवे? कभी नहीं। किसी भाषा की दो लिपियों का होना बुरी बात नहीं है। पुस्तकों के लिये ऐसे अक्षर चाहिये जिनका पढ़ना सहज है। लिखने के लिये उनकी आवश्यकता है जो लिखने में सहज है। दो लिपियों के होने से थोड़ी कठिनता पड़ती है सही, पर लाभ बहुत होता है।

५. मैं सोच विचार करके और बहुत दिनों से कैथी अपने काम में अभ्यास करके फिर कहता हूं कि अटकल एक तिहाई समय बच जाता है। यह एक ऐसी बात है जो केवल दोनो लिपियों के अभ्यास करने से मालूम हो सकती है। मैं ने ऐसा ही किया और अपने काम के लिये कैथी को सर्बथा प्रसन्न करता हूं।

६. 'आपने "ष" और "ख" का कैथी में एक ही रूप रखा है। यह क्यों?' यह कहना ठीक है। छापेखाने में भूल हुई और मेरी भी भूल हुई कि "प्रूफ़" को देखके मैं ने उसको शुद्ध नहीं किया। कैथी में "ष" नागरी के समान लिखना चाहिये (ऊपर की पाई को छोड़के)।

७. यदि हिन्दूस्तान में सब भाषाओं के लिये नागरी प्रचलित हो जाए तो लाभदायक बात होगी और मैं प्रसन्न हो जाऊंगा। और मेरी समझ में कैथी के द्वारा नागरी के प्रचलित होने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी पर अत्यन्त सहायता।

एडूविन ग्रीव्स।

उत्तर।

ग्रीव्स साहब के हम कृतज्ञ हैं। इसलिए कि एक हिन्दी मासिकपुस्तक में आपने अपने वक्तव्य को प्रकाशित करना योग्य समझा। आपने "अपना वक़् बचाने के लिए" अपना लेख अपनीही ईजाद की हुई कैथी में लिखा है। आप लिखते हैं कि यदि उनको कैथी पढ़ने में कुछ दिक़त हो तो आप उसे नागरी में नक़ल कराकर भेज सकते हैं। पर, हमने आपको इतनी तकलीफ़ देना मुनासिब नहीं समझा। ग्रीव्स साहब के लेख को पढ़ने में अपने और छापेख़ाने के कर्म्मचारियों के अधिक वक़् ख़र्च होने का ख़याल न करके हमने आपकी कैथी लिपि को ही मंज़ूर कर लिया। साहब की हिन्दी पढ़कर तबीयत बहुत ख़ुश हुई। यद्यपि वह जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं है, तथापि ऐसी भी हिन्दी लिखना एक विदेशी के लिए तारीफ़ की बात है। ग्रीव्स साहब ने (अँगरेज़ी-हिन्दी में) हिन्दी का एक बहुत बड़ा व्याकरण बनाया है। वह साढ़े चार रुपये में मिलता है। आपने तुलसीदास के रामायण की भाषा का व्याकरण भी लिखा है। खेद है, हमें आपके व्याकरण देखने का सौभाग्य नहीं हुआ। अब हम आपके लेख के प्रत्येक अंश का यथाक्रम, नम्बरवार, उत्तर देते हैं।

१। ग्रीव्स साहब कहते हैं कि आपकी यह राय नहीं कि "यदि कैथी अक्षरों का प्रयोग हो तो काग़ज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखनेवाला उसे दौड़ाता चला जाय"। आप इसे भूल बतलाते हैं। आप कहते हैं कि उन्होंने इतना ही कहा है कि "हिन्दी के लिए ऐसी लिपि अब लों नहीं मिल सकती जिससे काग़ज़ पर से क़लम को बिना उठाये लिखी जा सकती है"। आपने अपने अँगरेज़ी लेख से जो अवतरण दिया है उसमें "Running hand"—का हिन्दी में क्या अर्थ होगा? "दौड़ती हुई या दौड़नेवाली लिखावट" कहना तो दिल्लगी से ख़ाली न होगा। "द्रुतगामिनी लिपि" कहने का भी महाविरा नहीं है। एक शब्द "घसीट" हिन्दी में है। वह अँगरेज़ी के "Running hand" के अर्थ का बोधक ज़रूर है। इसलिए हम उसका ही प्रयोग यहां पर करते हैं। साहब कहते हैं कि हिन्दी में अँगरेज़ी की ऐसी घसीट लिखावट का होना अब तक साध्य या सम्भाव्य नहीं। यह कह कर आप नई तरह के कैथी अक्षर ईजाद करते हैं और कहते हैं कि उनके लिखने में वक़् और मेहनत दोनों की कोई एक तिहाई बचत होती है। अब, "शार्ट हैण्ड" (Short hand) को छोड़कर, घसीट ही एक ऐसी लिखावट है, जिसमें वक़् की बचत होती है। तो क्या इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि ग्रीव्स साहब का मतलब है कि उनकी कैथी लिखने में क़लम को काग़ज़ से उठाने की ज़रूरत न पड़ेगी? यदि व्यञ्जना-वृत्ति भी कोई चीज़ है; यदि व्यञ्जक वाक्य भी कोई चीज़ है; यदि व्यंग्यार्थ भी कोई चीज़ है तो हम कहते हैं कि साहब के वाक्यों से यह अर्थ ज़रूर निकलता है। "अरे मार डाला!" कहने से "दौड़ो, मुझे बचाओ" का अर्थ निकलता है। और, स्कूल के किसी लड़के के मुँह से "अरे दस बज गये!" निकलने से "स्कूल जाने का वक़् हो गया" सूचित होता है। इसी तरह यह लिखकर कि हिन्दी में किसी ऐसी लिपि के होने की अभी तक कोई सम्भावना नहीं जो अविच्छिन्न रीति से लिखी जा सके, उसके बादही ग्रीव्स साहब का नई कैथी-लिपि ईजाद करना और यह कहना कि उसके लिखने में एक तिहाई वक़् की बचत होती है, ज़रूर यह ध्वनित करता है कि उस लिपि के लिखने में

काग़ज़ से क़लम के न उठाना पड़ैगा। अन्यथा वक्त की बचत होगी किस तरह ? सिर्फ़ ऊपर की पाई छोड़ देने से ? हरगिज़ नहीं।

हम, ज़रा देर के लिए, माने लेते हैं कि व्यञ्जना से ग्रीव्स साहब के वाक्य हमारे किये हुए अर्थ की पुष्टि नहीं करते। बहुत अच्छा। साहब ने जो अँगरेज़ी-अवतरण दिया है, उसका उत्तर-भाग आपने छोड़ दिया है। वह इस प्रकार है—

"And I would not for a moment advocate the adoption of Roman-Hindi, which is probably an offence to the eye of every true student of Hindi. Does Kaithi hold out any prospect of relief ? I am convinced that its does.

इसका और ग्रीव्स साहब के द्वारा उद्धृत किये गये इसके पूर्वभाग का मतलब यह है—"हिन्दी में अब तक ऐसी किसी लिपि के होने की सम्भावना नहीं जो काग़ज़ के ऊपर से क़लम उठाये बिना लिखी जा सके। और, मैं रोमन-हिन्दी को काम में लाने की सिफ़ारिश, एक पल भर के लिए भी, नहीं करता। रोमन-हिन्दी को देखकर हिन्दी के सच्चे प्रेमियों की आँखों में पीड़ा होना सम्भव है। अच्छा, तो कैथी से उपकार होने—मदद मिलने—की कोई उम्मैद है ? मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि है।"

साहब ने पहले कहा, अब तक हिन्दी में कोई ऐसी लिपि नहीं जो काग़ज़ से क़लम उठाये बिना लिखी जा सके। फिर आपने वहीं, उसी पाराग्राफ़ में, अनुपद ही, "विश्वासपूर्वक" (ऐसे वैसे भी नहीं) कहा कि कैथी से ज़रूर उपकार होगा—ज़रूर मदद मिलैगी। किसको मदद मिलैगी ? बात चल रही है, काग़ज़ से क़लम न उठाने की। अतएव मदद उसको न मिलैगी तो किसको मिलैगी ? फिर भी ग्रीव्स साहब कहते हैं कि आपने यह नहीं कहा कि आपकी कैथी लिखने में काग़ज़ से क़लम उठाने की ज़रूरत न पड़ैगी ?

२। हमने अपनी आलोचना में ख़ुद ही कह दिया है कि शायद ग्रीव्स साहब ने जान बूझ कर सब संयुक्त वर्णों की सूची नहीं दी। आप कहते हैं, "क्या लाभ है कि बहुत संयुक्त अक्षर बनाये जाएं जो कदाचित दो चार मरतबा साल भर काम में लिये जाएं" ? यह लिखते समय साहब को "हिन्दुस्तान-रिव्यू" में प्रकाशित अपने अँगरेज़ी लेख का एक सिद्धान्त भूल गया सा जान पड़ता है। वहां आप कहते हैं—"Insist on conjunct letters being formed and used." अर्थात् संयुक्त वर्णों के बनाये और काम में लाये जाने का आग्रह किया जाय—इसरार किया जाय। इस पूर्वापर विरोध पर साहब ही कृपापूर्वक विचार करें। इस नई कैथी का आविष्कार करने में जिस आविष्कर्ता का ख़ास मतलब वक्त का बचाना है, उसका यह कहना कि "अक्स" को "अकुस" लिखकर लिखनेवाला दो की जगह तीन अक्षर बनावै, मानों अपने ही हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है।

हमारी प्रार्थना है कि ग्रीव्स साहब की संयुक्त वर्ण-सूची बिलकुलही अपूर्ण है। आपने जो कैथी ईजाद की है, वह सिर्फ़ दसही पाँच संयुक्त वर्णों का प्रयोग करनेवालों के लिए नहीं की, सब के लिए की है। और, अच्छे अच्छे लेखक संस्कृत और फ़ारसी आदि के ऐसे शब्द काम में लाते हैं जिनमें अनेक प्रकार के संयुक्त वर्णों की ज़रूरत पड़ती है। उनको आप हलन्त वर्ण लिखकर, काम निकालने की जो सलाह देते हैं, उसे वे कभी पसन्द न करेंगे। इस प्रकार की सलाह यह साबित करती है कि आपकी कैथी अच्छे पढ़े लिखे आदमियों के काम लायक़ नहीं। हमने आपकी सूची में, पहले व्यञ्जन 'क' के साथ युक्त होनेवाले अक्षरों के न दिये जाने की त्रुटि, नमूने के तौर पर, दिखलाई थी। "रिक्थ" का तो विशेष प्रयोग नहीं होता, परन्तु "पक्व", "परिपक्व", "क्वार", "अक्ल", "अक्लर", "बक्लर", और "बाक्ल" आदि का

बहुधा प्रयोग होता है। अच्छा अब दूसरा वर्ण 'ख' लीजिए। आपने सिर्फ़ ख+य का संयोग बतलाया है। बस। कहिए अब "सख़्त", "तख़्त", "दरख़्त", "नेकबख़्त", "पुख़्ता", "तख़्ता", "तनख़्वाह" और "शख़्स" इत्यादि कैसे लिखे जायँ? सब हलन्त के प्रयोग से! तब तो वक़्त की ख़ूब बचत होगी। याद रखिए, ये सब शब्द अक्सर लिखे जाते हैं और यदि एक लिपि के प्रस्ताव में थोड़ी भी कामयाबी हुई तो ऐसे शब्दों का प्रयोग और भी अधिकता से होने लगेगा।

आपके "विराम" शब्द का मतलब हमारी समझ में नहीं आया। हिन्दी में "विराम-चिन्ह" "Punctuation" को कहते हैं। विराम से शायद आपका मतलब हलन्त वर्ण के नीचे लगानेवाली तिरछी पाई (हलन्त-चिन्ह) से है।

३। आपकी कैथी सीखने में समय भी दरकार है और मेहनत भी। हिन्दी लिखने पढ़नेवालों के लिए कम, और लोगों के लिए अधिक। आपके कोई कोई संयुक्त वर्ण बहुतही टेढ़े मेढ़े हैं। यदि सब संयुक्त-वर्णों को आप सृष्टि करेंगे तो समय और मेहनत की मात्रा और भी बढ़ जायगी। यदि आपको कैथी-लिपि का प्रस्ताव करना ही था तो इस समय न करना था। जब बङ्गाली, महाराष्ट्र और गुजराती लोगों से हिन्दी के पक्षपाती कह रहे हैं कि आप देवनागरी लिखना सीखिए, तब आपको लिखने के लिए कैथी और छापने के लिए नागरी का प्रस्ताव करना मानों उन लोगों के रास्ते में काँटे बिछाना है। नागरी का कुछ अधिक प्रचार हो जाने पर यदि आप कैथी लिखने का प्रस्ताव करते तो कम विरोध की बात थी। और प्रान्तवाले दो दो प्रकार की लिपियों के सीखने का साहस कम कर सकते हैं।

"इन वर्णों में सिवा ऊपर की पाई के और कौन बड़ा फ़र्क़ है?" यह हमने नागरी के क-वर्ग से मुक़ाबला करते समय सिर्फ़ आपके कैथी के क-वर्ग के विषय में कहा है; सब अक्षरों के विषय में नहीं। कृपा करके आप हमारी आलोचना के उस अंश को फिर देख जाइए।

४। यदि एक प्रकार की लिपि से अच्छी तरह काम हो जाय तो दो प्रकार की लिपि के होने की कोई ज़रूरत नहीं। दूसरे प्रकार की लिपि के सीखने में जो समय और श्रम दरकार होता है, उसकी मात्रा से, उसके सीखने से होनेवाले लाभ की मात्रा यदि अधिक हो, तभी उसका सीखना युक्तिसङ्गत कहा जा सकता है। हमारी राय में आपकी कैथी-लिपि में यह गुण नहीं।

५। आपके कैथी अक्षरों की बनावट ही कह रही है कि उनका आकार नागरी के अक्षरों के आकार से एक तिहाई कम नहीं है। ऊपर की पाई का कम हो जाना एक तिहाई के बराबर नहीं। अतएव एक तिहाई समय की बचत नहीं हो सकती। हमारे कहने का सबूत आपको सहज में मिल सकता है। आप किसी हिन्दुस्तानी के साथ बैठ कर लिखिए। वह नागरी लिखै, आप कैथी। तब आपको फ़ौरन ही मालूम हो जायगा कि आप कितना जल्द लिख सकते हैं। यदि आपको नागरी-वर्णों के ऊपर की पाई ही समय का अपव्यय करनेवाली जान पड़ती है तो आप एकबारगी ही एक सतर काग़ज़ की बाईं तरफ़ से दाहिनी तरफ़ तक खींच कर नागरी लिख सकते हैं। मध्यप्रदेश में नागरी का प्रचार बहुत दिनों से है। वहां कचहरी के मुलाज़िम अक्सर इसी तरह सरकारी काग़ज़ात लिखते हैं और बहुत जल्द लिखते हैं।

६। इस पारा में जवाब देने की कोई बात नहीं।

७। आपकी नई कैथी का प्रस्ताव, इस समय, और प्रान्तों में, नागरी के प्रचार का थोड़ा-बहुत बाधक ज़रूर हो सकता है। क्यों? यह हम तीसरे पारा के उत्तर में बतला चुके हैं।

———

मक्का-तीर्थ ।

जैसे हिन्दू लोग सैकड़ों रुपये ख़र्च करके और नाना प्रकार के शारीरिक श्रम उठा कर, तीर्थयात्रा करते हैं, ठीक उसी तरह हमारे मुसलमान भाई भी धर्म्म की प्यास बुझाने के लिये सैकड़ों हज़ारों रुपये बिगाड़ कर और अपनी जान ख़तरे में डालकर तीर्थदर्शन किया करते हैं। मुसलमानी धर्म्म का जन्म अरब में हुआ था। मुसलमानी धर्म्म के जन्मदाता हज़रत मुहम्मद अरब के रहनेवाले थे। इसीसे मुहम्मद साहब का जन्मस्थान मक्का, तथा उनकी समाधि का शहर मदीना, मुसलमानों के सब से बड़े तीर्थ हैं। हर साल पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक के हज़ारों धार्म्मिक मुसलमान मक्के-मदीने की हज करने जाते हैं। मुसलमानी तीर्थयात्रा को हज कहते हैं। यात्री लोग हाजी कहलाते हैं।

जिस प्रेस में सरस्वती छपती है, उस प्रेस के एक कर्म्मचारी अभी हाल में हज करके लैाटे हैं। उनके मुँह से मक्का के विषय में जो कुछ बातें सुनने में आई हैं, वही सरस्वती के वाचकों को हम भी सुनाते हैं।

मक्का जाने के लिये हिन्दुस्तान के मुसलमानों को पहले बम्बई जाना पड़ता है। वहां पर यात्री लोगों से जहाज़ पर आने जाने के किराये के सिवा, घर लैाट आने के लिये उनसे रेल का किराया तक वसूल कर लिया जाता है। अरब से लैाट आने पर, ख़र्च चुक जाने से, पहले हाजी लोग, बहुधा, घर नहीं लैाट सकते थे। ख़र्च के अभाव से उनको बड़ी बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ती थीं। यहां तक कि बहुधा सरकार को अपनी तरफ़ से रेल का किराया देकर ऐसे हाजियों को उनके घर तक पहुंचा देना पड़ता था। इसलिए अब पहले ही से, जहाज़ पर सवार होने के आगे, सब यात्रियों से उनके घर तक लैाटने का किराया वसूल कर लिया जाता है। नहीं तो वे जहाज़ पर सवार ही नहीं होने पाते।

अस्तु, हमारे हाजी भी सतना तक का वापसी टिकट लेकर जहाज़ पर जा बैठे। रीवां में इनके भाई महाराजा के डाक्टर हैं। इसलिये उन्होंने सतना तक, जो रीवां के लिए रेल का स्टेशन है, वापसी टिकट ख़रीदा। जहाज़ों के नियम के अनुसार पांच दिन तक सब लोगों को बम्बई में एक स्थान पर "क्वारनटाइन" में रहना पड़ा। अर्थात् पांच दिन तक सरकार ने ठोंक बजा कर सबको देख लिया कि कोई प्लेग या किसी दूसरे रोग से पीड़ित मनुष्य हज के बहाने यमलोक की ओर न चल दे; अथवा अपने पुछल्ले में दूसरे सैकड़ों हाजियों को बांध कर न उड़ा ले जाय। यह प्रबन्ध रोग के रोकने के लिए है। सुनते हैं कि प्लेग पहले हिंदुस्तान में नहीं था। जहाज़ों ही के द्वारा किसी समुद्रपार के देश से यहां पधारा है। परन्तु, तौभी, जहां तक बन पड़ता है, सरकार हर तरह से प्रजा की भलाई ही की चेष्टा करती है।

हाजियों का जहाज़ बम्बई छोड़ कर अनन्त नीले आकाश से घिरे हुए, पहाड़ों की तरह बड़ी बड़ी लहरों से उमड़ते हुए, विशाल अरबसागर की छाती पर पंख मारते आगे बढ़ा। लहरों से टक्कर खाने से जहाज़ बहुत डांवाडोल होता है। इसलिए, जो लोग पहले पहल जहाज़ पर सवार होते हैं, उनके उदर-रूपी सागर के भीतर भी डांवाडोल मच जाता है। लोग ऐसे बीमार हो जाते हैं कि क्षुब्ध हुए पेट-रूपी प्रचण्ड सागर की लहरें मुँह की राह से उछल उछल कर बाहर आने लगती हैं। चारों तरफ़ से 'व्हाक' 'व्हाक' की ध्वनि से यात्री लोग उन लहरों को बाहर बहाने लगते हैं। परन्तु यह पीड़ा सिर्फ़ दो तीन दिनों में शान्त हो जाती है। मानवी शरीर का धर्म्म है कि मनुष्य चाहे कितना ही अनभ्यस्त क्यों न हो, वह शीघ्रही नई प्रकृति के नियमों के वशीभूत हो जाता है। फिर जहाज़ पर शान्ति बिराजने लगती है। परन्तु जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है वे लोग बहुधा यह पीड़ा (अंग्रेज़ी में इसे

सी-सिकनेस [Sea-sickness] कहते हैं) नहीं पाते। हमारे हाजी साहब ने एक दिन भी यह पीड़ा नहीं भोगी। उनका प्रशान्त उदरसागर अरब-सागर की लहरों से भेट करने के व्यग्र नहीं हुआ।

जहाज़ आठ दिन में अदन जा पहुंचा। वहां से लालसागर होकर, दस दिन में वह कामरां नामी टापू के किनारे पहुंचा उसीके पास से, उस समय, रूसियों का बाल्टिक बेड़ा जापानियों से कुश्ती लड़ने जा रहा था। परन्तु रात के समय दूर से जलती हुई रोशनी के सिवा और कुछ नहीं देख पड़ा। लाल सागर की चैाड़ाई नकशे में ज़रा सी जान पड़ती है। पर जहाज़ पर से समुद्र के किनारे तक नहीं देख पड़ते।

कामरां से चलने पर दो दिन बाद जहाज़ जिद्दा के बन्दर में आ लगा। जहाज़ किनारे पर नहीं लगता। किनारा छिछला होने के कारण भारी जहाज़ों के गहरे पानी ही में लङ्गर डालना पड़ता है। हाजियों के जहाज़ के लङ्गर डालते ही किनारे से सैकड़ों नावों ने आकर उसे चारों तरफ़ से घेर लिया। सैकड़ों अरबी मल्लाह, डारविन साहब के पूर्व-पुरुषों की तरह, रस्सी थाम थाम कर ऊपर चढ़ आये। उस समय सन्ध्या हो गई थी। इसलिये हाजियों के पंडों ने उनके उस समय किनारे उतरने की सलाह न दी। इससे उस रात के लिए सब लोग जहाज़ ही पर रहे। अरबी लोग बड़े चोर होते हैं। नाववाले मल्लाह भी चोरी की कला में एम० ए० पास कर चुके हैं। उनको अफ़सोस इस बात का है कि एम० ए० के आगे और कोई उससे भी बड़ा दरजा ही नहीं। नहीं तो वे उसे भी बात की बात में पास कर डालते। इसलिए जहाज़ के कप्तान ने पुलिस बुलवाकर सब मल्लाहों के जहाज़ पर से खींच खींच कर दूर कर दिया। दो चार मल्लाह लालच न सँभाल सकने के कारण यात्रियों में जाकर छिप बैठे थे। परन्तु पकड़े जाने पर पुलिसवालों ने डंडों से उन सबों की खूब अच्छी तरह ख़बर ली।

दूसरे दिन, सबेरा होते ही, हाजियों के जहाज़ से उतरने की धूम मच गई। जहाज़ पर से सीढ़ियां लटका दी गईं। उन्हीं सीढ़ियों से सब लोग नीचे नावों पर उतरे। उस दिन समुद्र शान्त था। परन्तु जिस दिन हवा चलती है, और समुद्र की लहरें चञ्चल होने से नावें हिलने लगती हैं, उस दिन सीढ़ी का भी मिज़ाज़ बिगड़ जाता है। तब जहाज़ पर से उतरना सहज नहीं होता।

हिन्दू पाठकों के अच्छी तरह मालूम है कि तीर्थ के पण्डे कैसे लालची, कैसे दुखदाई, होते हैं। हमने समझा था कि हिन्दुस्तानी पण्डे ही यात्रियों के तंग किया करते हैं; परन्तु मुसलमान पण्डे भी उनसे किसी बात में कम नहीं होते। अरब के हर पण्डे के हिस्से में और और देशों की तरह हिन्दुस्तान के भी कई ज़िलों की यजमानी बटी रहती है। हमारे हाजी जी बङ्गाली मुसलमान हैं। उनका घर चैाबीस-परगने के ज़िले में है। ऐसा जान पड़ा कि जो पण्डा चैाबीस-परगने के यात्रियों का अधिकारी है, उसीके हिस्से में इलाहाबाद भी है। परन्तु उस अभागे के भाग में हमारे हाजी साहब की एक कानी कौड़ी भी नहीं बदी थी। उन्होंने पहले ही से कई हैदराबादी भद्र पुरुषों का साथ कर लिया था। इससे हैदराबाद के अधिकारी पण्डा जी ही हमारे हाजी जी की जोंक बने। हाजी जी ने अपने साथियों का साथ छोड़ना न चाहा। उस दिन जिद्दा के बन्दर पर कम से कम १५० पण्डे मैाजूद थे। पण्डों का अरबो नाम मुअल्लिम है।

तुर्की गवर्नमेन्ट की तरफ़ से जो हाकिम नियत रहता है उसे शरीफ़ कहते हैं। पर मुअल्लिम से शरीफ़ तक सब लोग लालची हैं। यदि सरकारी अफ़सर मुअल्लिमों से मिले हुए हों तो भी कुछ आश्चर्य्य नहीं। क्योंकि कोई भी अफ़सर यात्रियों की शिकायत नहीं सुनता। सभी बात बात में हाथ पसारे रहते हैं। अंग्रेज़

गवर्नमेन्ट की ओर से इलाहाबाद के रहनेवाले एक डाक्तर साहब जिद्दा के कानसल हैं।

जिद्दा पहुंच कर यात्रियों से कई तरह के टैक्स लिये जाते हैं। जहाज़ पर से उतरते ही १।।।=) नाव, कुली इत्यादि के लिए देना पड़ा। उत्तर की तरफ़ रूम के राज्य से मदीने तक एक रेल बन रही है। उसके लिए १॥) लिया गया। परन्तु बहुतेरों ने इसे नहीं भी दिया। यात्रियों की रक्षा के लिए डेढ़ डेढ़ मील पर सौ सौ तुर्की सिपाहियों की चौकी रहती है। उनके पालन-पोषण के लिये भी ६॥) देना पड़ा। मुसाफ़िर-ख़ाने का किराया प्रति मनुष्य।) रोज़ है। जिद्दा से पूर्व की तरफ़ मक्का है। जिद्दा से वह ३६ मील दूर है। मुअ़ल्लिम की सहायता से यात्रियों ने सवारी के लिए ऊंट मंगवाये। पीछे से मालूम हुआ कि यदि मुअ़ल्लिम के द्वारा ऊंट न मंगाये जाते तो ३६ मील की सवारी में २०।२५ रुपये की बचत हो सकती थी। ३५) रु० की जगह १०) या १५) ही रुपये में ऊंट मिलना असम्भव न था।

परन्तु धर्म्म के नाम पर रुपये पैसे का इतना लालच करना अच्छा नहीं। और धन के बिना धर्म्म की राह भी कठिन हो जाती है। अकसर वह मिलती ही नहीं।

ऊंट आये। ऊंटों पर लोग सवार हुए। कैसे सवार हुए सो भी सुन लीजिए। किसी किसी ऊंट की कुबड़ी पीठ पर एक सीधी चारपाई बँधी रहती है। कोई उसी पर बैठ कर रेत-रत्नाकर की लहरों पर कभी ऊपर, कभी नीचे, हिलता हुआ दूसरी बार सामुद्री बीमारी का ध्यान करता था। और कोई ध्यान करता था 'सुख दुख' का। संसार-सागर में ग़ोता लगा कर सुख दुख का स्वाद किसने नहीं पाया है। परन्तु अ़रब के रेत-सागर का 'सुख दुख' एक अपूर्व वस्तु है। उसका अ़रबी नाम सुगदुप है। सुगदुप एक तरह की सवारी है। अर्थात्, दो खटोलियां ऊंट की पीठ से उसके दोनों ओर लटकती रहती हैं। उन खटोलियों पर अ़रब-रवि के तीखे किरणों से तनिक बचने के लिए छत की तरह कुछ छाया बनी रहती है। परन्तु जो इस सवारी पर एक बार चढ़ा है, वही कहता है कि इससे जितना सुख मिलता है, उतना ही दुख। इसीसे इसका नाम सुख-दुख, वा सुगदुप, पड़ा होगा। एक तरह की और भी खटोली होती है, उसका नाम छिबड़ी है। उसपर सुख-दुख से कुछ अधिक दुख मिलता है। संसार में दुखही अधिक है। इसी बात की याद दिलाने के लिए शायद यह आविष्कार किया गया हो।

जिधर नज़र उठाइए, मालूम होता है कि पृथ्वी अनन्त रेतीले मैदान ही से बनी है। रेत का न ओर देख पड़ता है न छोर। आगे रेत, पीछे रेत, अगल बग़ल में रेत, चारों तरफ़ रेत,—रेत ही रेत—रेत—रेत,—बस, और कुछ नहीं। कहीं कहीं बीच बीच में ऊंट के कूबड़ों की तरह रेतीले मैदान के भी कूबड़ निकले हुए दिखाई देते हैं। रेतीले टीलों और पहाड़ियों को छोड़ कर इस विशाल रेत के मैदान में और दूसरी वस्तु नेत्रों के सामने नहीं देख पड़ती। ये पहाड़ियां मक्के की राह में कहीं पर कम हैं, कहीं पर अधिक। परन्तु हैं वे भी रेत ही की। उनके पत्थर भी सब बालू के हैं।

अभी कल तक अनन्त अपरिमेय पानी के मैदान पर हाजी जी जा रहे थे। और अब उस लीलामय की लीला को देखिये,—वह पानी का मैदान सूख गया, पानी की जगह बालू भर गया। पानी पर जहाज़ कूद रहा था। बालू पर ऊंट की पीठ कूद रही है। इस बालू-रूपी समुद्र में दुर्बल मनुष्य के लिए ऊंट ही जहाज़ है। ऊंट न हो तो भरभूंजे की भाड़ में चने की तरह इस ज्वलन्त रेतीले भाड़ में मनुष्य भी जल भुन जाय। अंग्रेज़ लोग ऊंट को रेतसागर का जहाज़ (The ship of the desert) कहते हैं, सो ठीक है।

हाजी जी जिस दल में थे, उसमें ३०० ऊंट थे। और तुर्की सरकार की ओर से ५० सिपाही उन लोगों की रखवाली के लिये एक चौकी से